ही में रोकते हुए समुद्रविजय बोले—"हाँ, अतुल्य ऐश्वर्य का स्वामी हूँ मैं। मेरे यश में भी वृद्धि हो रही है। मेरे घर में तेजस्वी पुत्र भी है। पर क्या अपने पुत्र के गम्भीर मुख को देखकर मैं सुखी रह सकता हूँ। मैं राजा हूँ पर साथ ही पिता भी हूँ। रानी! बात पूछ ही रही तो सुनो—मैं जब अरिष्ट नेमि का गम्भीर मुख देखता हूँ तो लगता है मानो मेरा यह धन-धान्य, यह सम्पत्ति, यह ऐश्वर्य और यह यश किसी काम का भी तो नहीं। जिससे मेरा तेजस्वी पुत्र सुखी नहीं, उससे मैं कैसे सुखी रह सकता हूँ। वह न जाने क्या सोचता रहता है। न जाने किन विचारों में डूबा रहता है। कौन जाने क्या चिन्ता है उसे? क्यों अन्दर ही अन्दर घुल रहा है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है मानो महल और ऐश्वर्य उसे किसी प्रकार भी नहीं भाता। वह संन्यासियों की मुद्रा में, दार्शनिकों की भाँति हर समय विचार मग्न रहता है। न किसी से हँसता-बोलता है और न दूसरे युवकों की भाँति उठता-बैठता है। क्या है उसके दिल में, मैं नहीं समझ पाता।"

शिवादेवी गम्भीर हो गई, एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और बोली—"यही बात अन्दर ही अन्दर मेरे मन को भी कचोटती रहती है। कई बार मैंने उससे उसके दिल की बात जाननी चाही पर वह कुछ बताता ही नहीं। देखती हूँ कि वही चिन्ता आपको भी लगी है।"

समुद्रविजय आसन से उठकर कमरे में इधर से उधर घूमने लगे। स्पष्ट था कि वे चिन्ताग्रस्त हैं, एक गांठ है, जिसे वे खोलना चाहते हैं। कुछ देर कमरे में नीरवता छाई रही और उसे भंग किया शिवादेवी ने। बोली—"मैं तो सोचती हूँ कि अब अरिष्टनेमि का विवाह कर दिया जाय। सम्भव है गृहस्थ जीवन उसकी मनःस्थिति को बदल दे।"

समुद्रविजय के पग स्थिर हुए। बोले—"इतनी-सी ही बात हो तो काम चल जाये। पर कदाचित वह विवाह के लिए तैयार ही नहीं है। जिनसे कभी कुमार बातचीत करता है, वे तो ऐसा ही कहते हैं।"

"हाँ, मैंने भी स्वयं कईबार प्रश्न उठाया। उसे समझाया, और अन्य से भी पुछवाया, पर वह विवाह के लिए कभी हाँ कहता ही

नहीं। पर क्या उसकी इस दशा को ऐसे ही देखा जा सकता है ? आपको जोर डालकर उसे विवाह के लिए तैयार करना चाहिए।"—रानी ने कहा।

"बात ठीक है। मैं कह सकता हूं। पर उसके ललाट पर कुछ ऐसी अलौकिक ज्योति है, ऐसा तेज है, उसके नेत्रों में ऐसी दिव्य चमक है, कि उसके सामने आते ही, मैं अपने को उससे प्रभावित समझ लेता हूँ। उसका जादू का सा प्रभाव हो जाता है मुझ पर और मैं इस स्थिति में ही नहीं रहता कि किसी बात के लिए उसे मजबूर कर सकूं—"समुद्र-विजय बोले।

"आप ठीक कहते हैं स्वामी ! शिवादेवी ने कहा—न जाने क्यों मैं भी उस पर कोई जोर नहीं दे पाती। जिस समय वह सौम्य मूर्ति मेरे मेरे सामने आता है, मेरा हृदय उसके प्रति आदर से भर जाता है और जी चाहता है कि उसके आगे सिर झुका दूं। न जाने क्यों अन्तःकरण से मुझे ऐसी प्रेरणा मिलती है, कि उससे कुछ सुनूं अपनी न कहूँ, ठीक ही कहा है कि—शीलवान का चेहरा भी कुछ जादू जैसा होता है।" फिर भी जब मैं उस विरक्ति के भाव उदय होते देखती हूँ मुझे चिन्ता होने लगती है। कहीं हमारा यह लाल वैरागी होकर इन महलों को सूना तो न कर जायेगा ?"

कहकर शिवादेवी मौन हो गई। कुछ सोचने लगी और फिर, जैसे कि कोई स्वप्न टूटा हो, वे हड़बड़ाकर बोलीं—"नहीं मैं अपने लाल को ऐसे नहीं रहने दूंगी ? आज आपको उसे बुलाकर समझाना ही होगा। आपको उसे विवाह के लिए तैयार ही करना होगा। बुलाइये उसे।"

समुद्रविजय चौंककर रानी के चेहरे को देखने लगे। बोले—हां, उसे बुलाकर समझाना ही होगा। परन्तु रानी तुम्हें भी किसी प्रकार उसे राजी करना पड़ेगा। सारी बात मैं न कह सकूंगा।"

"हां, हां आज मैं अवश्य ही कहूँगी।"

"लाड से, प्यार से, जैसे भी हो....."

"और आप भी तो उसे सुपथ पर लाने की चेष्टा करें, कहीं अकेले

मुझ पर ही भार सौंपकर अलग न हो जायें।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा बस हम दोनों को दृढ़तापूर्वक कहना होगा।"

बात तय हो गई और अरिष्टनेमि जी को बुला भेजा गया। इतने में माता-पिता ने आपस में तय कर लिया कि बात कैसे उठाई जायेगी। कौन आरम्भ करेगा और कौन क्या कहेगा।

ज्योंही वह सौम्य मूर्ति सामने आये और उन्होंने माता-पिता को प्रणाम किया, उनका हृदय मोम की भांति पिघल गया। स्वतः ही मस्तक उनके तेज के सामने झुकने लगा। समुद्रविजय शिवादेवी को और शिवा देवी समुद्र-विजय की ओर निहारने लगी। किसी से कुछ न कहा जा सका। तब अरिष्टनेमि जी ने स्वयं ही पूछा—"पिता जी! आपने मुझे याद किया था?"

हाँ, बेटा! आओ बैठो। तुम्हें तुम्हारी माता याद कर रही है।"—समुद्र विजय बोले।

"माता जी! क्या आज्ञा है?" आज्ञाकारी पुत्र की भांति अरिष्ट-नेमि जी ने हाथ जोड़ कर माता जी से पूछा।

अब तो माता जी को बोलना ही पड़ता, पर बात उन्हें अच्छी न लगी कि पहले उन्हें ही बोलने को विवश किया जा रहा है। वे बोलीं—"बात यह है बेटा! कि तुम्हारे पिता जी तुम्हारी गम्भीरता से बड़े चिन्तित हैं।"

मुस्करा कर अरिष्टनेमि जी ने पूछा—"तो क्या पिता जी उच्छृंखलता को पसन्द करते हैं।"

"नहीं बेटा! तुम्हारे स्वभाव की सभी प्रशंसा करते हैं। तुम्हारी गम्भीरता ही तो तुम्हारे आगे सभी को नत-मस्तक किए होती है"—समुद्र विजय बोले।

अब माता जी कुछ चिढ़ गईं। बोलीं—"वाह यह भी खूब ही रही। अभी ही तो आप चिन्ता व्यक्त कर रहे थे।"

"तुम भी तो कह रही थीं, कि अरिष्टनेमि आवश्यकता से अधिक गम्भीर रहता है।" समुद्र विजय ने रानी की ओर देखकर कहा।

"और क्या आप नहीं कह रहे थे ?

"हाँ, हाँ मै भी कह रहा था, तो क्या हुआ ?"

अरिष्टनेमि जी बोले—"माता जी और पिता जी जो बात हो आप आज्ञा करें।"

"देखो बेटा तुम्हारी यह खामोशी और वैरागियों को सी सौम्यमूर्ति कुछ अच्छी नहीं लगती। प्रसन्न रहा करो।"—समुद्र विजय बोले।

माता जी को भी जोश आया। कहने लगीं—"तुम्हारी यह आयु ही हँसने-बोलने की है। तुम तो वृद्धों की भांति गम्भीर बने रहते हो। आखिर बात क्या है ?"

"और देखो बेटा। अब तुम विवाह की स्वीकृति दे दो। तुम्हारो माँ अपने जीवन में ही तुम्हें दुल्हा बना देखना चाहती हैं।"—समुद्र विजय बोले।

मां कहने लगीं—"हाँ, हाँ अब आयु अधिक होती जा रहो है। तुम्हारे पिता जी चाहते हैं कि बस कहीं तुम्हारा विवाह कर दिया जाये और सुख पूर्वक रहो। अब तुम्हारे पिता देरी करना अच्छा नहीं समझते।"

शिवादेवी की बात समाप्त हुई तो समुद्र विजय ने कहा—"अरिष्ट-नेमि ! गृहस्थ जीवन का एक महान कर्तव्य सन्तान की सृष्टि भी है। तुम्हारी आयु का तकाजा है कि वंश की बेल को आगे चलाने के लिए तुम विवाह करो।"

इतनी देरो तक अरिष्टनेमि जी धैर्य पूर्वक माता-पिता की बातें सुनते रहे और फिर बोले—"पिता जी ! मुझे आप की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने में प्रसन्नता होती है परन्तु जहां तक विवाह का प्रश्न है आप इसके लिए मुझे बाध्य न करें। मेरी आत्मा गार्हस्थ्य के जंजाल में नहीं पड़ना चाहती। मैं त्याग में विश्वास करता हूँ। धर्म ग्रंथों के स्वाध्याय में मुझे जितनी शांति मिलती है, सांसारिक बातों में उतनी नहीं। आप जान-बूझ कर मुझे मोह ममत्व के बंधनों में जकड़ने की इच्छा न करें। मैं आवागमन की श्रृंखला को तोड़ने में विश्वास करता हूँ।"

अधीर होकर शिवादेवी बोली—"बेटा ! तो क्या मुझे यह इच्छा लेकर ही संसार से जाना होगा कि एक दिन इस महल में तुम्हारी चांद सी रानी देखूँ। अपनी गोद में पौत्र को खिलाऊँ। बेटा ! मेरी मनोकामना पूर्ण होगी तभी मैं शांति पूर्वक संसार से जा सकूंगी। जिस समय मैं अपने परिवार के दूसरे तुम्हारे समान युवकों की घर-गृहस्थी देखती हूँ और तुम्हें खोया-खोया सा देखती हूँ मेरे मन में हूक-सी उठती है। नहीं; बेटा तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी। क्या अपनी मां की एक इच्छा भी पूरी नहीं करोगे ?

समुद्र विजय कहने लगे—"बड़े विश्वास से हमने तुम से अपनी इच्छा कही। मैं समझता हूँ कि तुम हमारी मनोकामना पूर्ण करने में कभी भी पीछे पग न रखोगे। तुम हमारी आदर्श सन्तान हो। मान जाओ बेटा। विवाह के उपरान्त भी तुम स्वाध्याय कर सकते हो।"

"हां बेटा ! तुम्हें विवाह करना ही पड़ेगा।"—शिवादेवी ने जोर देकर कहा।

"बेटा ! तुम्हें अपनी मां को निराश नहीं कराना चाहिए।"—समुद्र विजय भी बोले।

अरिष्टनेमि जी के समाने बड़ा धर्म संकट खड़ा हुआ। पर वे तनिक भी विचलित न हुए, बोले—"माता जी ! विवाह करना आप आवश्यक ही समझती हैं तो अभी इतनी जल्दी क्या है। मुझे कुछ दिनों का अवकाश और दीजिए।"

—और वे चले गए। माता पिता एक दूसरे के मुंह की ओर देखते रह गए।

एक दिन अरिष्टनेमि जी अपने मित्रों सहित घूमने निकले। इधर-उधर चक्कर काटते हुए वे श्रीकृष्ण के अस्त्रागार में पहुँच गए। सभी जानते थे कि श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि जी का कितना आदर करते हैं, इस लिए अस्त्रागार में जाने से उन्हें किसी ने नहीं रोका। सभी अस्त्रों को स्वयं शास्त्रागार का संरक्षक ही दिखाने लगा। निरीक्षण करते हुए अरिष्टनेमि जी सभी अस्त्र-शस्त्र की विशेषता को पूछते जाते थे, संरक्षक उत्साह पूर्वक बता रहा था। जब सारंग धनुष पर अरिष्टनेमि जी दृष्टि गई तो

संरक्षक ने उस की बड़ी प्रशंसा की। अरिष्टनेमि जी का हाथ उसकी ओर उठा। संरक्षक बोला—"इसे श्रीकृष्ट के अतिरिक्त और कोई उठा ही नहीं सकता।"

अरिष्टनेमि जी ने ज्यों ही उसे हाथ लगाया, जल्दी से शस्त्रागार का रक्षक बोला—"नहीं, नहीं। आप उसे हाथ न लगाइये। यह बड़ा भारी और भयंकर धनुष है। आप नहीं उठा सकेंगे।"

अरिष्टनेमि जी ने मना करने पर भी देखते ही देखते धनुष उठा लिया। शस्त्रागार संरक्षक मना ही करता रह गया। और अरिष्टनेमि जी ने धनुष को उठा कर उसे कमल-नल की भांति झुकाकर प्रत्यंचा भी चढ़ाई और एक टंकार भी की। इस टंकार को सुनकर सभी लोग कांप से गए। शस्त्रागार रक्षक विस्फारित नेत्रों से देखता रह गया। दूर के लोगों के कानों में में जब यह भीषण टंकार पड़ी तो कांप उठे और एक दूसरे से पूछने लगे—"अरे यह कैसी टंकार है? क्या कोई श्रीकृष्ण का शत्रु आ गया है?"

उसी समय अरिष्टनेमि जी ने पांचजन्य उठाया और फूंका। पांचजन्य की आवाज सुनकर प्रजाजन और भी भयभीत हुए। 'यह क्या हो रहा है, कोई आक्रमण कारी आ गया है क्या?" की आवाजें उठने लगीं।

उधर श्री अरिष्टनेमि जी ने सुदर्शन चक्र उठाकर घुमाया। फिर गदाएं और खडग घुमाईं, जिनके विषय में सभी को ज्ञात था कि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उन्हें घुमाने की शक्ति किसी में नहीं है।

अस्त्र-शस्त्रों की आवाजें सुनकर श्रीकृष्ण के महल में खल-बली मच गई। श्रीकृष्ण के सखे दौड़कर उनके पास पहुंचे और भयभीत होकर बोले—"गोविन्द! यह कैसी आवाजें आ रही हैं? अभी-अभी हमने सारंग धनुष की टंकार सुनी, पांचजन्य की ध्वनि सुनी। कैसी आवाजें आ रही हैं यह? शस्त्रागार में कोई शत्रु तो नहीं?"

श्रीकृष्ण स्वयं विस्मित थे। सखाओं को साथ लेकर तुरन्त शस्त्रागार की ओर चले। वहाँ के पहरेदार स्वयं भयभीत थे। घबराये हुए पहरेदारों

के मुँह पर हवाइयाँ उड़ती देखकर श्रीकृष्ण ने पूछा—"कौन है शस्त्रागार में ?"

"महाराज ! अरिष्टनेमि जी मना करने पर भी अस्त्रों को उठा-उठा कर देख रहे हैं।"—पहरेदार बोला।

श्रीकृष्ण अन्दर गए। देखा अरिष्टनेमि जी उन भारी अस्त्र-शास्त्रों को उठा-उठाकर देख रहे हैं, जिन्हें श्रीकृष्ण के अतिरिक्त आज तक किसी ने छुआ तक नहीं। उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। अरिष्टनेमि जी ने श्रीकृष्ण को ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा—"आपके शस्त्रागार के संरक्षक कहते हैं कि इन अस्त्र-शस्त्रों को आपके अतिरिक्त और कोई नहीं उठा सकता, न चला ही सकता है। पर इन अस्त्र-शस्त्रों में मैं तो ऐसी कोई बात नही देखता।"

श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा उनके सामने कर दी और बोले—"मेरी भुजा भी तो एक अस्त्र है। आप इसे मोड़ सकते हैं क्या ? तनिक जोर तो लगाइये।"

अरिष्टनेमि जी के मुख पर स्वाभाविक मुस्कान झलक आई। और तनिक देरी में ही उनकी भुजा मोड़ दी। श्रीकृष्ण का मुख प्रातः कालीन सूर्य की भाँति लाल हो गया। तब अरिष्टनेमि जी ने अपनी भुजा ऊपर उठा दी और बोले —"भैया जी ! तनिक मेरी भुजा को तो झुका दो।"

श्रीकृष्ण ने आव-देखा-न-ताव तुरन्त जोर लगाना आरम्भ कर दिया। पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी वे भुजा झुकाने में असफल रहे और स्नेहातिरेक में अरिष्टनेमि जी को गले लगाया। दोनों भ्राता बड़े प्रेम से गले मिले। श्रीकृष्ण कहते जाते—"भैया ! तुम्हारा असीम बल देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। तुम कितने बलिष्ट हो अरिष्टनेमि जी ! कहाँ तक गर्व करूँ ?"

और अरिष्ट नेमि जी कहते जाते—"नहीं हरि ! तुम में भी अतुल्य बल है।"

दोनों बन्धुओं को इस प्रकार गले मिलते देख दर्शकों को बड़ा हर्ष हुआ। दोनों में से किसी को भी न अभिमान था और न आत्मग्लानि। दोनों का प्रेम-भाव उनके अंग-अंग में झलक रहा था।

  

श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा--"भैया! आज मेरे नेत्रों पर बंधी पट्टी खुल गई। अरिष्टनेमि जी के बल के सामने मेरी शक्ति कुछ भी तो नहीं। वह तो बड़े ही बलिष्ट हैं। दिग्विजय कर सकने की क्षमता रखते हैं वे।"

बलराम बोले--"यह तो बड़े हर्ष की बात है। फिर हमारे वंश को कौन पराजित कर सकता है?"

"परन्तु कभी अरिष्टनेमि जी का अतुल बल हमारे वंश में ही अन्याय का कारण तो नहीं बनेगा, मुझे यही शंका है। आज मैं उनकी भुजा न झुका सका, कहीं अरिष्टनेमि को यह अभिमान तो नहीं हो जायेगा कि कृष्ण उनके सामने कुछ भी नहीं। इसलिए कहीं सारे भरत-खण्ड में अपना राज्य स्थापित करने की लालसा तो उनके हृदय में जागृत नहीं हो जायेगी? भैया! मुझे यही शंका हो रही है–" श्रीकृष्ण ने अपने मन की बात बताते हुए कहा।

बलराम सान्त्वना देते हुए बोले–"गोविन्द! तुम्हें ऐसी शंका भी नहीं करनी चाहिए। अरिष्टनेमि में चाहे जितना बल हो, वह कभी राज्यादि प्राप्त करने की कामना कर ही नहीं सकते। वे तो राजसुख के प्रति उदासीन हैं। रात-दिन स्वाध्याय में लगे रहते हैं। ऐसा लगता है कि वे घर-गृहस्थी त्यागकर चार महाव्रती मुनि बाना ग्रहण कर लेंगे।"

"मन बड़ा चंचल होता है, कौन जाने किस समय क्या करने पर उतर आये–श्रीकृष्ण कहने लगे—क्या कभी अरिष्टनेमि जी ने इतने वर्षों से शस्त्रागार की ओर मुँह किया था? नहीं, फिर आज कैसे वे उधर गए। इसी प्रकार क्या किसी दिन राज्य......।"

"गोविन्द ! तुम्हारी आशंका निर्मूल है। तुम विश्वास रक्खो। ऐसा कभी नहीं होगा"—बलराम ने सान्त्वना देते हुए कहा।

श्रीकृष्ण मौन रह गए और बलराम उन्हें प्रत्येक प्रकार से धैर्य बँधाकर अपने मकान में चले गए।

सायं की अरुणाई साड़ी में रात्रि के प्रथम चरण की काली गोट लग गई। पक्षी लौटकर अपने घौंसलों में अपनी सन्तान के पास चले गए। और कुछ देर बाद आकाश में तारागण उसी प्रकार चमकने लगे, जैसे नील जल में छोटी-छोटी कमलकलियाँ छिटक रही हों, चन्द्रमा नक्षत्रों की रक्षा में अपनी यात्रा पर बढ़ा।

इधर श्रीकृष्ण अपनी शय्या पर करवट बदल रहे थे। सोच रहे थे अरिष्टनेमि जी के सम्बन्ध में। कभी उन्हें अपने वंश पर गर्व होता, कभी अरिष्टनेमि जी जैसे महान भ्राता पर अभिमान होता और कभी मन के किसी कोने में छुपी आशंका मुँह उठाकर उन्हें झिझोड़ देती ! तभी खिड़की से एक प्रकाश पुँज आता प्रतीत हुआ और उनका शयनागार जगमगा उठा। जैसे चन्द्रमा ही आकाश से उतर आया हो। श्रीकृष्ण के सामने कुलदेवी प्रगट होकर बोली—"गोविन्द ! चिन्ता की बात नहीं। इक्कीसवें तीर्थंकर ने कहा था कि बाईसवें जिनराज आजीवन ब्रह्मचारी र कर जगत का उद्धार करेंगे। अरिष्टनेमि जी भोगों की ओर से उदासीन रहेंगे और अपने वंश ही नहीं संसार के कल्याण के लिए त्याग तपस्या करेंगे। अब समय निकट है, जब एक अलौकिक शक्ति जगमगायेगी।"

"तो क्या अरिष्टनेमि जी ही बाईसवें तीर्थङ्कर हैं ?"—श्रीकृष्ण ने पूछा। कुल देवी का मुख मण्डल खिल उठा और वह मन्द-मन्द स्मित बखेरती हुई अन्तर्धान हो गई।

श्रीकृष्ण सोच में पड़ गए। वे सोचने लगे यदि वास्तव में यही सत्य है तो अरिष्ट नेमि जी कभी विवाह नहीं करेंगे। और वे विवाह करते हैं अथवा नहीं बस यही हैं उनकी कसौटी किसी भी प्रकार अब विवाह का प्रश्न उठाना होगा।

प्रातः काल ही श्रीकृष्ण समुद्र विजय के महल में गए। शिवा-देवी और समुद्र विजय दोनों ने ही उनसे कहा कि अरिष्ट नेमि अभी तक अविवाहित हैं, यह हमारे लिए लज्जा की बात है। तुम त्रिखण्ड पति हो, और तुम्हारा भाई अभी तक कुंआरा रहे, यह तो तुम्हारे लिए बहुत शर्म की बात है। किसी प्रकार उनका विवाह करना ही होगा। श्रीकृष्ण बोले—"आप विश्वास रक्खें अब अरिष्टनेमि जी कुंवारे नहीं रहेंगे। इतना सच्चरित्र, यशस्वी, महाबली और रूपवान कुमार भला अविवाहित रह ही कैसे सकता है। उनके लिए तो हजारों देवियां प्रणयदान प्राप्त करने को उत्सुक हैं। परन्तु वे तो स्वयं ही ऐसा भाव बनाए रहते हैं कि किसी को विश्वास ही नहीं होता कि वे गृहस्थी के जंजाल में भी अपने को आबद्ध करने को तैयार हो सकते हैं। और अभी तक इस सम्बन्ध में आपके मौन रहने के कारण मैं भी समझे बैठा था कि उनकी गार्हस्थ्य के प्रति उदासीना के कारण आप भी इस सम्बन्ध में उदासीन ही हैं। किन्तु आज आपकी उत्कण्ठा देखकर मुझे साहस हुआ है कि इस सम्बन्ध में कुछ करूं।"

श्रीकृष्ण की बात को युक्ति-युक्त समझ कर शिवादेवी बोलीं—"बेटा! तुम ठीक ही कहते हो। अरिष्ट नेमि के मनोभाव देखकर हमारा कभी साहस ही नहीं हुआ कि उसके विवाह की बात उठायें। कई बार पूछा, पर उसने इस ओर से उदासीनता दर्शाई। विवश होकर हम चुप रहे। पर अब तो कुछ करना ही होगा। तुम्हें पहले तो उसे विवाह के लिए तैयार करना होगा। वह तुमसे बड़ा स्नेह रखता है। सम्भव है तुम्हारी बात मान जाये।"

श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि अभी तक अरिष्टनेमि दृढ़ता पूर्वक ब्रह्मचर्य पालन कर रहे हैं, और माता पिता का दुलार भी उन्हें विवाह के लिए तैयार नहीं कर सका। इसलिए सबसे पहले उनके निश्चय को डिगाने का सवाल है। वे बोले—"माता जी! आप इस काम को मेरे ऊपर छोड़ दीजिए। आपके आशीर्वाद से मैं अपने प्रयत्न में सफल होऊंगा, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।"

"बेटा ! यदि तुम इस काम को पूर्ण कर दो, तो एक जटिल समस्या सुलझ जाये और हमारी छाती पर से चिन्ता का पहाड़ हट जाये।"--समुद्र विजय ने कहा।

श्रीकृष्ण उन्हें धैर्य बंधा कर वहां से चले आये और मन ही मन अरिष्टनेमि को विवाह के लिए तैयार करने के उपाय सोचने लगे।

  

श्रीकृष्ण समझ गए कि जब तक साधु स्वभाव के अरिष्टनेमि जी के हृदय में नारी के प्रति मोह, युवावस्था अनुकूल वासना, कामना, जागृत नहीं की जायगी, तब तक अरिष्टनेमि जी का तप, त्याग की ओर से ध्यान भंग नहीं हो सकता। वे समझते थे, नारी स्वयं ही विद्युत--सागर है। उसके स्पर्श मात्र से युवा पुरुष के शरीर में तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं और साधना के व्रत चूर-चूर हो जाते हैं। इसलिए अरिष्टनेमि जी के सोये युवा-भावों को जगाना होगा, उनके मन में नारी के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना होगा। उनके मनोभावों को गुदगुदाना होगा। जिस कामना को साधना के आवरण में दबा दिया गया है, यदि रूप-मधुरी का सामीप्य प्राप्त हो तो सम्भव है वह अगड़ाई लेकर उठ खड़ी हो। इसलिए उन्होंने अवसर पाकर अरिष्टनेमि जी के हृदय में नारी के आकर्षण के प्रति मोह का प्रादुर्भाव करने का निश्चय कर लिया!

एक दिन श्रीकृष्ण को चिन्ताकुल देखकर रानी भामादेवी को बड़ी चिन्ता हुई। पतिव्रता नारि भला अपने पति का मुरझाया हुआ मुख मण्डल कैसे सहन कर सकती है। पूछा--"प्राणनाथ! आज चन्द्रमुख मलिन क्यों है?"

"प्रिये! एक समस्या आन खड़ी है।"

"क्या ऐसी ससस्या है जिसे सुलझाने के लिए आप इतने व्याकुल हैं?"

"हां, ऐसी ही समस्या है।"

"प्राणप्रिय! यदि सम्भव है तो अपनी दासी को भी बताइये। सम्भव हुआ तो मैं आप को चिन्ता रहित करने के लिए कोई उपाय करूंगी।"--भामा रानी ने कहा।

"रानी ! तुम्हें तो ज्ञात ही है कि अरिष्टनेमि जी अभी तक अविवाहित हैं। महाराज उन्हीं के लिए चिन्ताकुल रहते हैं और अब उन्हें विवाह के लिए तैयार करने का भार मुझे सौंपा गया है। परन्तु यह कैसे सम्भव है यही समझ में नहीं आता।"— श्रीकृष्ण ने पूर्ण आयोजित योजना के अनुसार कहा। वे जानते थे कि गुत्थी को सुलझाने में कोई रूपवती रानी ही सहयोग दे सकती है।

भामा ने उत्साह पूर्वक कहा—"बस, इतनी सी बात के लिए आप इतने व्याकुल थे ?"

"यह कोई कम जटिल समस्या तो नहीं है।" गम्भीरता पूर्वक श्री कृष्ण ने कहा।

भामा का चेहरा खिल उठा था, वह बोली—"स्वामी किसी रूपवान युवक को विवाह के लिए तैयार करना कौन बड़ी बात है। नारी तो वह मदिरा है, जिसके सामीप्य से ही उसकी मादकता का प्रभाव हो जाता है। जो इसके स्वाद से परिचित नहीं, वे भले ही इसके मोह से अनभिज्ञ रहें, पर जिसकी रगों में यौवन-रस बह रहा हो, और उसकी सुप्त भावनाओं को जगा देने के लिए रूप--माधुरी भी उपलब्ध हो जाये, वह इस ओर आकर्षित न हो यह तो असम्भव बात है। आप इस काम को मेरे ऊपर छोड़ दीजिए।

श्री कृष्ण को आशातीत उत्तर मिलने से बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने चन्द्रमुखी भामा के नयनों में झांक कर देखा और फिर उसे अपने आलि-गन में कसकर कहा—"इन मादक नैनों की मदिरा से यदि तुम अरिष्ट नेमि जी में भी मस्ती भर दो, तो जो चाहे पुरस्कार मांग लेना। मुझे विश्वास है कि तुम्हारी रूप-माधुरी और सरस वाणी एक बार अवश्य ही उनकी उदासीनता को झंझोड़ डालेगी। बताओ, फिर कब रही यह परीक्षा।"

"बसन्त उत्सव पर।"

"ओह ! बड़ा ही सुन्दर अवसर है।"

"हां आप उन्हें हमारे साथ बसन्त उत्सव मनाने के लिए रेवती गिरि पर चलने को तैयार कर दें। बस वेड़ा पार ही है।"—भामा ने विजयोल्लास की सी मुद्रा में कहा। श्री कृष्ण ने हामी भर ली।

बसन्तोत्सव की तैयारियां जोर शोर से आरम्भ हो गई। श्री कृष्ण ने सभी यादव कुमारों को सपत्नी रेवाचल के वन में चल कर वसन्तोत्सव मनाने के लिए निमन्त्रित कर दिया। अरिष्टनेमि जी को भी किसी प्रकार तैयार कर लिया गया। रेवाचल के प्रांगण में भूम रहे बन में डेरे लगवा दिए गये। और सभी प्रकार के प्रवन्ध पूर्ण हो जाने पर चलने की तैयारी हुई। भामादेवी ने अपनो सखियों, दासियों और श्री कृष्ण की दूसरी रानियों को अपने पास बुलाकर उत्सव पर किए जाने वाले विशेष काम को समझा दिया।

सजे हुए रथो पर रानियां सवार हो गई। विभिन्न प्रकार के बाजे बजते हुए, सेनाओं से घिरा यह काफला रेवाचल की ओर चल पड़ा। रास्ते में भामादेवी और रुक्मणि अपने देवर अरिष्टनेमि जी से छेड़-छाड़ करती जाती थीं। अन्य कुमार अपनी-अपनी पत्नियों का मन वहलाते जाते थे। दास दासियाँ ऋतुराज के स्वागत व अभिनन्दन में मस्त होकर गाते चल रहे थे। श्री कृष्ण की मुरली की मस्त स्वर लहरी गूँज रही थी। सभी के चेहरे खिले हुये थे।

जव यह काफला डेरों पर पहुंचा, छम, छम करती, अप्सराओं के समान, रंग विरंगे कपड़े पहने, विविध प्रकार के शृंगारों से युक्त रानियां, दासियां आदि रथों से उतर पड़ीं। चारों ओर वसन्त फूल रहा था। भोनी-भोनी सुगन्ध आ रही थी। इधर यह तितलियाँ पहुँच गईं तो मानो ऋतुराज की साज सज्जा में चार चाँद लग लए। उस दिन सभी स्वतन्त्र थे। श्री कृष्ण राजा के रूप में न होकर अन्य यादव कुमारों के सखा मात्र थे। सभी वसन्तोत्सव की रंग रलियां मनाने आये थे। सभी चारों ओर फैले प्रकृति के रूप-माधुर्य पर मुग्ध हो रहे थे।

इधर भामादेवी और रुक्मणि आदि ने अरिष्टनेमि जी को घेर लिया। चारों ओर से घेर कर उन पर कटाक्षों की भरमार कर दी।

कभी उनके रूप भी प्रशंसा की जाती, तो कभी उन पर व्यंग्य तथा परिहास की बौछारें होतीं। कोई उनके गहरे काले नेत्रों की मृग नयनों से उपमा देती और फिर चारों ओर से नृत्य आरम्भ हो गया। नूपुर बज उठे। पैरों की पायलों की मधुर ध्वनि के साथ-साथ कोकिला कंठों की ध्वनि गूंज उठी।

बसन्त ऋतु की बेला में हो यौवन की मुस्कान।
कहो सुखी फिर जियरा कैसे होवे ना कुरबान॥

गीत गाये जाने लगे। बसन्त की महिमा के साथ-साथ अरिष्टनेमि जी के रूप का गुण गान होने लगा। और फिर एक गीत के बाद दूसरे गीत के बोल निकले। रुक्मणि ने ऐसा गीत छेड़ा कि जिसमें एक रमणी अपने प्राण प्यारे के वियोग में, बसन्त ऋतु के आगमन पर अपने मनोभाव प्रगट करती है। जब यह गीत समाप्त हुआ, तो भामा रानी ने एक गीत और छेड़ा।

इस प्रकार कितने ही गीत गाये जाते रहे और अरिष्टनेमि के यौवनावस्था के भावों को तरंगित करने की चेष्टा की जाने लगी। तभी श्रीकृष्ण कहीं से पुष्पों की माला ले आये और जाकर अरिष्टनेमि के गले में डाल दी। फिर तो सभी रमणियां उन पर पुष्प वर्षा करने लगीं। भामा देवी कभी-कभी देवर की चुटकी काट लेती। कभी-कभी अपने सुकोमल हाथों से उन्हें गुदगुदी लगाती। फिर वे सभी चारों ओर से घेर कर बैठ गईं। एक बार अरिष्टनेमि जी का हृदय तरंगित हुआ। पर मन के हाथी पर उनके विचारों का अंकुश इतना कठोर था, कि वे सम्भल गए।

रुक्मणी ने कहा—"देवर जी! तुम्हारे भाइयों के तो कई-कई रानियां हैं। क्या तुम एक रमणी को भी नहीं सम्भाल सकते?"

भामा ने उत्तर दिया—"हमारे देवर जी! आगामी वसन्त पर जोड़े से आयेंगे। क्यों देवरजी?"

एक बोली—"अरे यह क्या खाकर रानी लायेंगे? अभी तो माँ का दूध ही नहीं छूटा उनसे।"

तभी दूसरी बोल पड़ी—"चार हाथ की छाती है देवर जी की इस छाती पर तो एक साथ चार रानियों का वक्ष भी सम्भल सकता है

इसी प्रकार की चुहल वे करती रहीं। पर अरिष्टनेमि जी मुस्क भर देते। कहते कुछ नहीं।

आखिर भामा रानी उनके पास गई और कहने लगी—"लो देवर सच बताना हम सब में तुम्हें किसका रूप पसन्द है ?"

अरिष्ट नेमि जी मौन रहे।

रुक्मणि ने हँसकर कहा—"क्या रूप पहचानने की शिक्षा नहीं मिली जवान हो, लौडियों की तरह शर्माते क्यों हो ?"

रुक्मणि उनके पीछे हाथ धोकर पड़ गई और एक बार सामने घुट के बल बैठकर कहने लगी—"देवर जी ! तुम्हें हमारी कसम ! बता दूसरे वसन्त पर अपनी रानी सहित आओगे न।"

अरिष्ट नेमि जी फिर भी न बोले।

भामादेवी दूर खड़ी थी, वहीं से बोली--"अरी तुम भी कैसी मू हो। उनसे पूछ रही हो, जिन्हें अपने कुल की नाक कटाना ही अच्छ लगता है। सारे नगर की नारियां हमें ताना देती हैं कि तुम्हारे देव बूढ़े होने को आये, पर अभी तक कुंवारे ही हैं। मेरी तो गरदन झु जाती है। पर किसी के अन्दर यौवन की लहर हो तो समझे। जो इ माया से रहित है वह क्या जाने जवानी की बात।"

रुक्मणि ने आगे बढ़कर अरिष्टनेमि जी का हाथ थाम लिया औ बोली—"यह सुन्दर हाथ, यह रूप, यह चौड़ी छाती, यह अरुणाई आभ यह ललाट का तेज, यह नयनों की मादकता, हाय राम। कितना लखरा है ? कितना आकर्षण है। भगवान की कसम, मुझे पहले पता होता त मैं तो आप ही को चुनती अपना भर्तार।" फिर आँखें मटकाती हु बोली—"अच्छा ! अब कहो, आओगे न अगले वसन्त पर अपनी दुल्ह के साथ ?"

अरिष्ट नेमि जी के अधरों पर मुस्कान खेल गई। और वह हर्ष तिरेक से उछल पड़ी। उन्हें गुदगुदी लगाकर बोल उठी—जो हँसे स फंसे। अरे मैं तो पहले ही कहती थी कि हमारे देवर कोई ऐसे वैसे थो ही हैं। भला मेरी बात कैसे टाल सकते हैं ?"

सभी ने समझा कि स्वीकृति मिल गयी। वे सभी हिल-मिल कर गाने-नाचने लगीं। सभी प्रसन्न थीं। रुक्मणि तो विजयोल्लास से आपे से बाहर हुई जा रही थी। थोड़ी ही देर में यह बात सभी जान गए कि अरिष्टनेमि जो विवाह के लिए तैयार हो गए। सुनते ही श्रीकृष्ण की प्रसन्नता की सीमा न रही।

सत्यभामा की इच्छा थी कि उसकी बहन राजमती के साथ अरिष्ट-नेमि जो का विवाह हो। उसने श्रीकृष्ण के सामने प्रस्ताव रक्खा और श्रीकृष्ण के मुंह वह प्रस्ताव समुद्रविजय के सामने गया। सभी ने प्रस्ताव स्वोकार करते हुए यह उपयुक्त समझा कि श्रीकृष्ण स्वयं राजा उग्रसेन के महल में जाकर कन्या देख लें और विवाह का निश्चय कर दें।

श्री कृष्ण ज्यों ही उग्रसेन के महल में पहुंचे, बड़ा ही स्वागत-सत्कार हुआ और जब राजमती को उन्होंने देखा, वे एक बार उसके रूप-माधुर्य को देखते ही रह गए। कालीदास के शब्दों में उसके रूप का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है :—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्न नाभि।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,
या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातु:।

वह कृशांगी है, उसकी दन्त पंक्ति अत्यन्त नुकीली है, उसके ओठ लाल बिम्ब फल के सदृश हैं, उसकी गात्रयष्टि बीच में पतली है, उसके कटाक्ष चकित हरिणी के नेत्रों की स्पर्धा करते हैं, उसकी नाभि गम्भीर है। नितम्ब भार से उसकी मन्थर गति है, और स्तन भार से वह आगे को झुकी रहती है—इन लक्षणों के एकत्र समवाय से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अलकापुरी की युवतियों में विधाता की प्रथम रचना है।

श्रीकृष्ण ने राजा से कहा—"आज मैं आप से कुछ मांगने आया हूं।"

उग्रसेन बोले—"कैसी बातें करते हैं? कहिए क्या बात है?" मैं अपने रूपवान, सर्वगुण सम्पन्न भ्राता अरिष्टनेमि के लिए राजकुमारी को मांगता हूं। आप निराश तो न करेंगे।"—श्रीकृष्ण ने कहा।

रानी का चेहरा खिल उठा। राजमती के मुख मण्डल पर अरुणाई आभा प्रस्फुटित हो गई और वह वहां से खिसक गई। राजा उग्रसेन अरिष्टनेमि जी के गुणों की प्रशंसा सुन चुके थे। हृदय में उमड़ते प्रसन्नता के सिन्धु को रोकते हुए उन्होंने कहा—"आपको निराश किया ही कैसे जा सकता है। जब कि हम स्वयं राजमती के लिए ऐसे ही उपयुक्त वर की खोज में थे।"

बात तय हो गई और उसी समय इस शुभ दिन का निर्णय भी हो गया, जब कि दो विभूतियों को एक दूसरे का बना देने का कार्य सम्पन्न किया जायेगा।

द्वारिका दुल्हन की भांति सज गई। चारों ओर तोरण, पुष्प मालाएं और सुगन्धियों से नगरी का शृंगार किया गया। घर-घर में हर्ष मनाया जाने लगा और महलों में विवाह की तैयारियां हो गईं।

निश्चित दिन पर बारात सजाई गई। हाथियों, घोड़ों, रथों तथा अन्य सवारियों को सजा दिया गया और अरिष्टनेमि जी को सजे हुए हाथी पर दूल्हा के रूप में सजा कर बैठा दिया गया। बाजे बजे, जय जयकार हुई और बारात चल पड़ी। नगर के नर-नारि अपने-अपने घरों से अरिष्टनेमि जी की अद्भुत छवि देखने के लिये निकल पड़े। मकानों की छतों पर बैठे लोग इत्र और पुष्प वर्षा कर रहे थे। बारात के आगे-आगे पंचरंगी सेना चल रही थी। आकाश में देवता गण बारात देख रहे थे। सजधज के साथ जा रही थी बारात।

शक्रेन्द्र ने अरिष्टनेमि जी की बारात देखी तो विप्र रूप धारण करके श्रीकृष्ण के सामने पहुंचे। जाकर बोले—"भगवन् अरिष्टनेमि जी की बारात देखकर कौन आनन्दित न होगा। पर बड़ी अशुभ घड़ी पर आप बारात ले जा रहे हैं। आपका मनोरथ पूर्ण नहीं होगा। इसलिए बारात वापिस ले चलिए।'

ऐसे समय विप्र की उक्त बात सुनकर श्रीकृष्ण का मुख तमतमा उठा। क्रुद्ध होकर बोले—"विप्र जी! आप कहाँ से आ गए दाल-भात में मूसलचन्द की भाँति। हमें नहीं चाहिए आपकी भविष्यवाणी। जाइये अपना काम कीजिए।'

विप्ररूपी शक्रेन्द्र मन ही मन हँसे और फिर हाथ जोड़कर बोले—"भगवन् आप रुष्ट क्यों होते हैं। ज्योतिष शास्त्र जो कुछ कहता था, मैंने वही विनय पूर्वक कहा है। अरिष्टनेमि जी के प्रति मुझे बहुत श्रद्धा है। उनकी बारात देखकर मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा। पर अशुभ लक्षणों को देखकर मुझ से न रहा गया। अच्छा है आप अपना निर्णय बदल दें।"

श्रीकृष्ण को और भी क्रोध हो आया। गरजकर बोले—"अशुभ शगुन तो तुम ही बना रहे हो। कह जो दिया, हमें नहीं चाहिए आपका परामर्श।"

शक्रेन्द्र जी वापिस लौट गए।

उग्रसेन की राजधानी सौलह श्रृंगार किये बारात के स्वागत के लिए तैयार थी। घर-घर में स्वागत गान गाये जा रहे थे। बारात के जाने का रास्ता पुष्प मालाओं, तोरण और स्वागत द्वारों से पटा पड़ा था। सड़क के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे मंचों पर शहनाइयां बज रही थीं। सारी सड़क इत्र से सुगन्धित हो रही थीं। स्त्रियों की स्वर लहरी गूंज रही थी। सभी नए-नए वस्त्र पहने स्वागत के लिये तैयार थे। ज्यों ही नगर से बाहर बारात के आगमन की सूचना मिली, राजा उग्रसेन अपने मन्त्रियों, सहायकों, मित्रों, राज कर्मचारियों, पंचरंगी सेना, बाजों के साथ उसके स्वागत के लिये आये। उस समय का दृश्य बड़ा मनोहर था।

बारात ने नगर में प्रवेश किया और पुष्प वर्षा होने लगी। राजधानी के लोग जय जयकार कर रहे थे। शहनाइयाँ बज रही थीं। गीतों की ध्वनि आ रही थी।

महल के निकट पहुँचते ही शहनाइयों और गीतों की आवाज को भेदते हुये पशुओं के चीत्कार सुनाई दिये। अरिष्टनेमि जी के कानों में यह चीत्कार शूल की भांति चुभे। और कुछ ही देर में उन्हें शहनाइयों और गीतों की ध्वनि के बजाय केवल पशुओं के चीत्कारों की आवाज ही सुनाई देने लगी। वे सिहर उठे। हृदय धड़कने लगा। उनकी पुण्य-आत्मा ने अंगड़ाई ली।

महावत से पूछा—"यह कैसी आवाज आ रही है। पशुओं के चीत्कार क्यों सुनाई दे रहे हैं?"

अरिष्टनेमि जी के मुख पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आई थीं। महावत बोला—"राजकुमार! हाँ यह पशुओं के चीत्कार ही हैं बारात के भोजन के लिए काटे जाने वाले पशुओं की आवाजें आती प्रतीत होती हैं।'

सुनते ही अरिष्टनेमि जी के हृदय में करुणा ने अंगड़ाई ली। पूछा— तो क्या हमारे भोजन के लिए पशुओं को काटा जा रहा है। हां, राजकुमार मांस के लिए एकत्रित किए गए पशुओं का वध किया जा रहा है।" महावत बोला।

सुनते ही अरिष्टनेमि जी के मन पर मानो भयंकर वज्राघात हुआ। निरीह पशुओं के करुण क्रन्दन तथा चीत्कार की ध्वनि तीव्र होती प्रतीत हुई। मानों वे सब पुकार पुकार कर कह रहें हो—"हे महा मानव! आपके पाणिग्रहण के लिए हमारी बलि दी जा रही है। आपको ग्रहस्थाश्रम में धकेलने के हर्ष पूर्ण अवसर पर आपकी बारात के लिए हमारे प्राण लिए जा रहे हैं। क्या हमारे चीत्कारों का आप पर कोई प्रभाव नहीं होगा? क्या आपकी सुप्त आत्मा जागृत न होगी? क्या हमारे शवों पर आप अपनी गृहस्थ लीला रचायेंगे?"

अरिष्टनेमि जी का मन चीत्कार कर उठा। मन ही मन उन्होंने कहा—"हे निरपराधी जीवात्माओ! मुझे यह स्वीकार नहीं है। जिस गृहस्थ के आरम्भ में इतनी हिंसा हो, उसे मैं स्वीकार नहीं करूंगा। मैं तुम्हारे शवों पर अपनी गृहस्थी की मन मोहक गद्दी नहीं सजाऊंगा।

मुझे निरीह जीवों के प्राण नहीं चाहिएं। हिंसा के साम्राज्य में मैं एक पल नहीं रह सकता। तुम वही हो, जो मैं हूँ। मैं यह अत्याचार सहन नहीं कर सकता। सभी जीव सुख चाहते हैं। अपने दुर्व्यसनों के लिए किसी के प्राण लेना घोर अन्याय है और है मानवता के प्रतिकूल। नहीं, मैं यह सेहरा नहीं बांधे रह सकता जिसके कारण अनेक जीवों को प्राणों से हाथ धोने पड़े। मैं पशुओं के शवों पर अपनी गृहस्थी का श्री गणेश उत्सव नहीं रचा सकता।"

और अरिष्टनेमि जी ने उसी क्षण अपना सेहरा खोल डाला, अपने सुन्दर कपड़े उतार डाले, आभूषण उतार कर रख दिए और पीलवान से कहा—"भाई! हाथी को पीछे घुमा दो। मैं उस गृहस्थ के जंजाल में नहीं पड़ूंगा जिसके श्रीगणेश के लिए पशु बध किया जाता हो। जिसका श्री गणेश इतना क्रूर है, उसका अन्त कितना भंयकर होगा।"

पीलवान अरिष्टनेमि जी के मुख को देखता रह गया। आश्चर्य चकित होकर बोला—"क्या कह रहे हैं राजकुमार! आप दूल्हा हैं, बारात चढ़ रही है। उग्रसेन ने विवाह की सम्पूर्ण तैयारियां कर डाली हैं। वह देखो महल से विपुल संगीत की ध्वनि आ रही है। दुल्हन सखियों के साथ महल पर खड़ी गौरवपूर्ण नेत्रों से देख रही है अभी कुछ देर बाद आप उस राजकुमारी के पति होने वाले हैं। ऐसे अवसर पर आप हाथी लौटा ले चलने को कह रहे हैं?"

अरिष्टनेमि जी ने गम्भीरता पूर्वक समस्त सुन्दर वस्त्र, आभूषण आदि पीलवान को देते हुए कहा—"भाई! यह तो तुम ने ठीक समय पर मेरी आंखें खोल दी हैं। तुम ने मुझे सच्ची बात बता कर पथभ्रष्ट होने से बचाया है। तुम्हारा कोटिशः धन्यवाद। मुझे नहीं चाहिए किसी कोमलांगिनी का पति बनना। मुझे शहनाइयों और संगीत ध्वनि के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। वह देखो, बध होते पशु मुझे पुकार रहे हैं। वे दुहाई मचा रहे हैं मुझे उन ही के चीत्कारों ने झंझोड़ दिया है। मैं उनके प्राणों की रक्षा करूंगा और भविष्य में होने वाले पशु-मेध को रोकने के लिए कार्य करूंगा। मैं इस रंग बिरंगे आकर्षण को

चकाचोंध में अपना कर्तव्य तथा धर्म नहीं भूल सकता । हाथी लौटा लो ।"

-'उस बेचारी राजकुमारी का क्या होगा राजकुमार ? पीलवान ने चिन्ता व्यक्त अरते हुए कहा—जिसने हृदय से आपको स्वामी मान लिया है । जिसका हर्षोन्माद से श्रृंगार किया जा रहा है, जो अपने मन को जलाए हुए कितनी हो आकांक्षाएं व आशाएं बडे यत्न से अपने हृदय में संजोए हुए आपकी प्रतीक्षा में बैठी है ।"

"कुछ भी हो मुझे अपना धर्म निभाना है, वह अपना धर्म निभाने को स्वतन्त्र है । वह यदि मुझे स्वामी मान बैठी है, तो मेरे पद-चिन्हों पर चलेगी । हाथी लौटा लो ।"—अरिष्टनेमि जी ने दृढ़ता पूर्वक कहा ।

सुन कर पीलवान अवाक् रह गया ।

हाथी लौटा लिया गया । यह देख कर बारात और दर्शकों व स्वागत करने वालों में खलबली मच गई ।

दूसरी ओर महल के ऊपर खड़ी राजमती अपनी सखियों सहित अरिष्टनेमि जी को देख रही थी और मन ही मन पुलकित हो रही थी । सखियां बारम्बार दूल्हा की प्रशंसा कर रही थीं । जब हाथी लौटते देखा तो राजमती सिहर उठी ।

अरिष्टनेमि जी के मात-पिता तुरन्त उनके पास पहुँचे और जाकर कहा—"बेटा ! ससुराल की ड्योढ़ी से हाथी क्यों लौटा लिया ?"

"नहीं पिता जी मुझे नहीं चाहिए यह विवाह । मैं इस हिंसा को सहन नहीं कर सकता ।"

"कौन सी हिंसा ?"

"पशु वध अहिंसा को आप अनुभव नहीं कर रहे ? जिस प्रकार मांस के लिए लाये गए निरपराधी पशु बन्धन मुक्त होकर प्रसन्न होते हैं, वही बात है जीव की । मैं अपनी आत्मा को बन्धन मुक्त करने के लिए जा रहा हूँ । मैं वास्तविक सुख की खोज में तपस्या करूंगा । मुझे नहीं चाहिए यह विवाह ।" अरिष्टनेमि जी ने कहा ।

समुद्रविजय सुनते ही कांप उठे । वे विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखते ही रह गये । कृष्ण, बलराम आदि ने जाकर बहुत समझाया । माता

ने आंखों में आंसू लाकर विनती की। पर अरिष्टनेमि जी न माने। हाथी लौट चला, द्वारिका की ओर।

—और उधर जब राजमती ने दूल्हा को वापिस जाते देखा, मूर्छित होकर गिर पड़ीं। सखियां उसे होश में लाने के प्रयत्न करने लगीं।

अरिष्टनेमि जी द्वारिका पहुँचे और जाते ही मुक्त हस्त से दान देना आरम्भ कर दिया। जो कि निरन्तर एक वर्ष पर्यन्त चलता रहा। द्वारिका में अरिष्टनेमि जी के विवाह किए बिना लौट आने का समाचार घर-घर पहुंच गया। सभी आश्चर्य चकित थे। पर जिस दिन अरिष्टनेमि जी संसार से विरक्त होकर नगर छोड़ कर चले, तो रहस्य सभी की समझ में आ गया। बड़ा शानदार जलूस निकला वे रेवागिरि की उपत्यका में नन्दन वन के समान "सहस्राम्रवन" नामके उपवन पधारे जहां पर खिली हुई केतकी के पुष्प मानो स्मित हास्य पूर्वक प्रभु का स्वागत कर रहे थे। ऐसे सुन्दर उपवन में उत्तर-कुरु नामक रत्नमयी शिविका से शिवाकुमार उतरे। और ईशान कोण की तरफ मुख करके अनुत्तर मोक्ष लक्ष्मी को वरण करने की कामना वाले अणुत्तर पुरुष ने नश्वर राज्यशाही के समस्त अलंकारों को उतार कर शाश्वत लक्ष्मी के प्रतीक मुनि वेष को धारण किया। यह श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी का पूर्वाह्न काल था, जब कि वेला तप को स्वीकार करके पंचमुष्ठि लोच के साथ, जीवन के समस्त पाप व्यापार को त्याग कर, अणुत्तर श्रमण धर्म को स्वीकार किया। उसी समय जगद्गुरु श्री नेमिनाथ जी को समस्त मानसिक व्यापारों को प्रतिभासित कर देने वाला मनः पर्यवज्ञान प्राप्त हुआ। प्रभु के महाभिनिष्क्रमण से प्रभावित होकर एक हजार राजाओं ने तभी मुनि दीक्षा को अंगीकार किया। इस प्रकार विश्वोपकारी का दीक्षा-महोत्सव करके श्रीकृष्ण आदि ने भक्ति श्रवण चित्त से उनके चरणारविन्द में नमस्कार किया और गद्गद् चित्त बने हुए अपने-अपने निवास स्थान को प्रयाण किया। उधर कर्म शत्रुओं के विनाशार्थ बद्ध परिकर श्री नेमिनाथ जी ने भी अन्यत्र विहार कर दिया।

× × ×

उधर राजमती को जब पता लगा कि अरिष्ट नेमिनाथ जी मुनिव्रत को स्वीकार करने की तैयारी कर रहे हैं, तो उसको "सम्भव है समझाने

से विचार बदल जाय," रूपी आशा वल्लरी पर भयंकर तुषार पात हुआ। वह क्षण भर के लिए संज्ञा खो बैठी। उसके धैर्य का बांध टूट चुका था। अश्रु धारा से जिसकी कंचुकी भीज रही थी ऐसी वह बाला विलाप करने लगी कि—हा दैव मैंने कब प्रार्थना की थी कि मुझे विवाह-बन्धन में बाँधा जाय? यदि यह रचना रची भी थी तो यह वज्रपात करके मुझे भग्न मनोरथ क्यों कर दिया? मैं तो पहले ही विचार कर रही थी कि कहां त्रैलोक्य पूज्य नेमिकुमार और कहां मैं? लेकिन प्रभो! यदि मुझे अपने अयोग्य समझते थे तो वाग्दान के रूप में ही क्यों स्वीकार किया था? परन्तु मैं समझती हूँ इसमें आपका कुछ दोष नहीं यह मेरे ही किसी अशुभ कर्मोदय का फल है। मैंने भी किसी पूर्व जन्म में ऐसे ही किसी दम्पति का वियोग करवाया होगा? जिसका आज मुझे फल भोगना पड़ रहा है। इस प्रकार विलाप करती हुई राजमती ने केश-विन्यास खोल दिया। मुक्तावलि तोड़ डाली। कंकणादि उतार फेंके। और शून्य चित्त के समान दिशाओं का अवलोकन करने लगी।

राजमती को सांत्वना देती हुई सखियों ने समझाना प्रारम्भ किया कि—बहिन इतना खेद किस लिए कर रही हो? तुम तो भाग्यशालिनी हो कि समय से पहले ही हम सब को पता लग गया कि नेमिकुमार गृहस्थ-धर्म के पालन कर सकने में अशक्त है। यदि यह घटना पाणिग्रहण के पश्चात् घटित होती तो तुम सोचो कि कितनी विपत्ति का सामना करना पड़ता? अब तुम्हारा ऐसे निष्ठुर नेमि को स्मरण करना ही व्यर्थ है। प्रद्युम्न, शाम्ब आदि अनेक यादवकुमार एक से एक सुन्दर, पुण्यशील एवं शक्तिशाली राजकुमार हैं। तुम जिसको उत्तम समझती हो उसी के साथ तुम्हारा पाणिग्रहण कर दिया जायेगा, अतः इस व्यर्थ के शोक को त्याग कर उठो और पूर्ववत हास परिहास में काल यापन करो।

सखियों के इन वचनों को सुनकर फन कुचली सर्पिणी के समान राजमती तिलमिला उठी, और क्रुद्ध होकर बोली—"कुल को कलंकित करने वाले वचनों को कहते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। क्या हुआ यदि पाणिग्रहण नहीं हुआ परन्तु वाग्दान के अनुसार तो मन एवं वचनों से तो मैं नेमिकुमार की पत्नी बन ही चुकी हूँ, अतः अब स्वप्न में भी अन्य

पति को स्वीकार करना नहीं चाहती। मैं समझती हूँ प्रभु ने मुझे वाग्दान के रूप में स्वीकार करके संसार रूपी समुद्र में डूबने से बचा लिया है। वे महा उपकारी हैं। अन्यथा किसी अन्य से सम्बन्ध होने पर मैं भी पशु पक्षियों की तरह वासना में ही मानव जीवन को नष्ट कर देती। उन्होंने स्वयं संयम-यात्रा को स्वीकार करके, धर्मपथ पर अग्रसर होकर जीवन-साफल्य का मेरा पथ-प्रशस्त कर दिया है। जीवन-संगिनी के रूप में अब मैं भी उनके पदों का अनुसरण करूंगी और मानव तन को धन्य बनाऊंगी।" सखियां ही नहीं माता-पिता आदि समस्त परिवार राजमती के इस सदाशय के सन्मुख नत-मस्तक थे। मोह-प्रवंचना से प्रेरित कौटुम्बिकों के वे समस्त प्रयत्न व्यर्थ हुए, जो उन्होंने राजकुमारी के विचार परिवर्तन के लिये किये थे। प्रत्येक प्रयत्न के पश्चात् राजमती का हृदय तप्त-स्वर्ण की तरह कुन्दन बनता जा रहा था। अब उसे हार-शृंगार से विरक्ति हो चुकी थी। नाचना गाना अरण्य रोदन एवं विडम्बना मय प्रतीत होता था। शरद्-ऋतु की नदी धारा के समान राजमती की विचार धारा शुचितर वैराग्य रूप में प्रवाहित हो रही थी। वह उस घड़ी की बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा करने लगी जबकि शिष्या के रूप में भगवान नेमिनाथ को वह अपने आपको मन, वचन, काया से समर्पण कर सके।

रथनेमि का उद्धार

जिस समय दया सागर श्री नेमिनाथ जी मुनिदीक्षा को अंगीकार कर गये, उनके पश्चात् रथनेमि का युवक हृदय अनिन्द्य सुन्दरी राजमती के मनोहर रूप सौन्दर्य माधुरी के पान करने के लिए मचलने लगा। वह इतना कामान्ध हो गया कि अपने ज्येष्ठ बन्धु द्वारा उपस्थित किये अलौकिक त्याग के उदाहरण को तो वह क्या स्मरण रखता, प्रत्युत सामाजिक मर्यादा एवं लोक-लज्जा को भी उठाकर ताक पर रख दिया। यदा कदा ही नहीं प्रत्युत नित्यप्रति ही सहानुभूति के मिस वह राजमती से मिलने लगा और अपने प्रति आकर्षित करने के लिए तरह-तरह के उपहार आदि भेंट करता रहता।

साध्वी राजकन्या समझती थी कि अपने ज्येष्ठबन्धु के अनुराग के कारण ही यह मेरी सेवा करता है और उधर रथनेमि अपने उपहारों

की स्वीकृति के कारण मन-ही मन यह अनुमान लगाने लगा था कि राजमती का हृदय मैंने जीत लिया है। एक दिन राजमती को एकान्त में पाकर अन्ततः रथनेमि ने अपना प्रस्ताव रख ही दिया कि-सुन्दरी, विकसित कमल की सी प्रभा वाले अपने इस शरीर को क्यों म्लान बनाने लग रही हो! यह रंगीली घड़ियां सदा-सर्वदा हाथ लगने वाली नहीं हैं। भाई तो यौवन सुख के अविज्ञात धर्मा थे। इसी कारण रुपसी रम्भा के प्रति वे आकर्षित नहीं हो सके। परन्तु मैं स्वयं तुम से प्रार्थना करता हूँ कि आओ ऐन्द्रिक सुखों का उपभोग करते हुए हम आनन्दित हृदय से प्रणय तरंगिणी के महा प्रवाह में प्रवाहित हो चले। राजमती को समझते हुए विलम्ब नहीं हुआ कि यह उपहार आदि के प्रदान के पाछे किन भावनाओं को संजाए हुए था। उस धर्म-शीला ने रथनेमि को बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु हुआ सब भैंस के आगे वीणा बजाना।

प्रातःकाल राजमती ने रथनेमि को आमंत्रित किया और आकंठ दुग्ध-पान करने के पश्चात् वमनशील मदन फल को फांक लिया। तभी कन्या के इंगितानुसार रथनेमि ने स्वर्णपात्र आगे रख दिया जिसमें कि राजमतो ने वमन कर दी। और मुस्कराती हुई बोली देखते क्या हो रथनेमि,इससे पहले कि इस पर मक्खियां भिनभिनाएं, आप इसे पी जायें। छीं·········घृणा से नाक भौं चढाते हुए रथनेमि ने कहा--कि मैं क्या कुत्ता हूं जो इस वमन का आस्वादन करूं ?

अच्छा, क्या आप भी जानते हैं कि वमन को सेवन नहीं करना चाहिए! राजमती ने पूछा। मैं तो क्या, एक बालक भी समझता है कि वमन को सेवन करना तो क्या, स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। पांडित्य छांटते हुए रथनेमि ने बताया।

यदि ऐसी बात है तो अपने ज्येष्ठ भ्राता के द्वारा वमित मुझे सेवन करने का विचार करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? उस धर्मिष्ठा बाला के तेजस्वी वचन के सामने रथनेमि की बुद्धि कुंठित हो गई। उसे स्वयं पर बड़ी ग्लानी अनुभव हो रही थी। अन्दर ही अन्दर उसकी आत्मा उसे धिक्कार दे रही थी। वह सोच रहा था कि यदि माता पिता एवं बन्धुजनों

को इस बात का पता लग गया तो उन्हें क्या मुंह दिखाऊंगा ! सचमुच ही मेरे से एक भयंकर अपराध हो गया है । यदि यह साध्वी कन्या अपने तेजस्वी वचनों से मेरे हृदय को उद्‌बुद्ध न करती तो मैं संसार की दृष्टि में तो धिक्कार का पात्र बनता ही, साथ ही साथ कुल कलंक कहला कर नरकों का महमान भी होता । रथनेमि उठा और राजमती के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ा कर अपने अपराधों के प्रति क्षमा याचना करता हुआ बाहर निकल गया। उसन इस जीवन-कलंक को धो डालने को ठान ली थी। जिसके कारण महल की तरफ नहीं वल्कि मुनिवेष को धारण कर रेवाचल की तरफ उसने अपना कदम बढाया ।

   

उधर आत्म ध्यान में विचरण करते हुए महा योगीश्वर श्री नेमिनाथ जी का रैवतगिरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान में पुनः पधारना हुआ । जहाँ उन्होंने तेला तप को स्वीकार करके वेतस वृक्ष के नीचे अटल ध्यान में स्वयं को स्थिर किया । और अन्ततः शुक्ल ध्यानानल से समस्त घाती कर्मों का नाश करके लोकालोक के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त करके सर्वज्ञ सर्वदर्शित्व पद को प्राप्त किया । यह आश्विन अमावस्या का प्रातःकाल था जबकि अरिष्टनेमिनाथ जी ने त्रैलोक्य सूर्य एवं भगवत पद को प्राप्त किया ।

आकाश में देव दुंदुभि का महाघोष गूंज रहा था । त्रैलोक्यनाथ के चरण स्पर्श से अपने को कृतकृत्य करने के लिए देव देवेश भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी वैमानिक देवों के चौसठ इन्द्र तत्क्षण वहीं उपस्थित हुए और प्रभु के चरण स्पर्श से अपने को धन्य-धन्य मानने लगे । तत्काल समवशरण की महान रचना रची गई । अशोक वृक्ष के नीचे पूर्वाभिमुख होकर महाप्रभु श्री अरिष्टनेमिनाथ जी अष्ट महाप्रतिहार्यों सहित विराजमान हुए चन्द्र सूर्यों के समान शोभावन्त बने । चारों दिशाओं में स्व-स्वस्थानों पर चारों जातियों के देवता देवी बैठकर प्रभु के मुखचन्द्र को चकोरवत् अवलोकन करने लगे ।

उधर वनपालक ने प्रभु के केवल ज्ञान महोत्सव का समाचार त्रिखंडेश्वर श्रीकृष्ण जी को दिया। जिससे गद्गद कंठ हुए वासुदेव ने शुभ समाचार प्रदान करने के उपलक्ष में कोटि द्रव्य प्रदान करके वन पालन की पीढ़ियों तक की सुख सुविधा को उपस्थित किया। और स्वयं दशों दशार्द्ध समस्त रणवास, यादव कुमारों एवं चतुरंगिणी सेना सहित बड़ी धूमधाम से समवसरण में उपस्थित होकर भक्ति भाव से प्रभु के चरणों में वन्दन करके प्रार्थना की कि—हे जगदाधार! जगद्गुरु! दयासागर, आपने यादव कुल को ही नहीं प्रकाशित किया प्रत्युत केवलज्ञान से त्रयलोक को उद्भाषित किया है। इस अनन्त संसार सागर में आप ही सच्चे शरणदाता जहाज स्वरूप हैं। जिस कामदेव ने समस्त संसार को जीता है उस त्रैलोक्य विजयी को आपने ही पछाड़ा है। भगवन! आपकी अनन्त आत्मिक लक्ष्मी के सामने हमारा यह नाशवान् वैभव तुच्छ है। परमेश्वर! आपकी इस त्रैलोक्याधीश पदवी की प्राप्ति में हमने जो-जो विघ्न उपस्थित किये थे, उन सब के लिये क्षमा करें। और मेरे हृदय मंदिर में सदा सर्वदा अपनी दिव्य-करूणा के महाप्रवाह को प्रवाहित रखें। भव-भव में अपनी चरण-शरण प्रदान करें।

इस प्रकार स्तुति करके वासुदेव जब अपने स्थान पर स्थित हुए तो प्रभु ने धर्मदेशना प्रारम्भ की कि—संसार के जितने भी पदार्थ हैं वे सब अस्थिर हैं। आज जिस पदार्थ का संयोग हुआ है कुछ समय पश्चात् उसी का वियोग हो जाता है। यह महल, हवेली धन, वैभव, स्त्री, पुत्र, माता, पिता, राज्य सत्ता आदि जो कुछ भी मनुष्य को प्राप्त हुआ है, अपने-अपने पुण्य-पापानुसार ही अनुकूल प्रतिकूल रूप में प्राप्त हुआ है। जब तक पुण्य-प्रकृति का प्रकाश फैला हुआ है यह सब वस्तुएँ मिली रहती हैं। और जहां पुण्य बल क्षीण हुआ तो सर्वत्र अंधकार छा जाता है। उन वस्तुओं के सद्भाव होने पर भी उनसे कुछ लाभ नहीं उठा पाता। अन्य तो क्या जिस शरीर के लिये मनुष्य सारे पाप कमाता है और दिन-रात जिसकी शुश्रूषा में लगा रहता है वह भी जीवन के लिये भार ही नहीं जंजाल बन जाता है। आज जो काया स्वर्ण समान दमकती है, पापोदय पर वही कास, श्वास, कोढ़ आदि से व्याधि मंदिर एवं विद्रूप

बन जाती है। कीड़े कुलकुलाने लगते हैं। अन्य तो क्या मित्र प्यारे एवं परिवार भी घृणा से छीं-छीं करने लगते हैं। अतः समय रहते-रहते जो अपने भविष्य का निर्माण कर लेते हैं वही बुद्धिमान् हैं। सारी उमर तो हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, लोभ, लालच, ईर्ष्या-द्वेष में नष्ट करता रहा फिर स्वप्न देखे स्वर्गों के ! यह कैसी भयकर भूल है। धतूरा वपन करके सेव अनार प्राप्त नहीं किये जा सकते। यदि सुख एवं आनन्द चाहता है तो पूर्व पुण्योपार्जन से साधन मिले हैं। एवं धर्माराधन में अपने मन-वचन-काया की शक्ति को लगाना चाहिये। वरना शक्ति का दुरुपयोग करने से, पाप कार्यों में नष्ट करने का परिणाम यह होता है कि भविष्य में उन शक्तियों की प्राप्ति से वंचित रह जाता है। यदि कृषक ने समय पर बीज को न बोया, रंगरेलियों में ही संलग्न रहा, बीज को भी खा गया, तो सिर धुन-धुन के रोने के सिवाय अन्य कुछ हाथ नहीं लगेगा। त्यों यह मानव-जन्म आत्मोत्थान का क्षेत्र है। पुण्योदय रूपी मौसम में यदि तप, जप, सयम आदि का बीज बो दिया तो भविष्य में धर्म रूपी खेती लहलहायेगी। अनन्तकाल का पाप रूपी दारिद्रय समाप्त हो जायेगा। यह कृषक रूपी आत्मा शाश्वत मोक्षलक्ष्मी का स्वामी बन कर, समस्त दुखों का विनाश करके, सदा सर्वदा के लिए आनन्दरूपी सच्चिदानन्द मय बन जायेगा।

इस प्रकार महाप्रभु ने जब विस्तार से मानव कर्त्तव्य एवं धर्माधर्म के स्वरूप का वर्णन किया तो भव्यात्माओं की आंखें खुल गईं और अनेक आत्माएं अविनाशी धर्मपथ के पथिक बनने के लिये कटिबद्ध हुए।

तभी वरदत्त नरेश उठे और विनयपूर्वक नमस्कार करके कहने लगे—कि भगवन् ! आप समस्त जीवों के अकारण बन्धु हो। हित करने वाले महा उपकारी हो। अतः सभी आपकी विनय भक्ति करते हैं। परन्तु उग्रसेन तनया राजमती का आपके प्रति अनन्य अनुराग है इसका क्या कारण है ?

वीतराग देव ने असंख्यकाल के पटलों का उद्घाटन करते हुए फरमाया कि "राजन् इसका कारण यह जन्म नहीं, प्रत्युत पूर्वजन्मों की परम्परा है। एक समय था : जबकि इसी भरत क्षेत्र में अचलपुर नरेश विक्रमधन के पुत्र धनकुमार के रूप में मेरा जन्म हुआ था। वहां कुसुम-

पुराधिपति सिंह राजा की पुत्री के रूप में राजमती का जन्म नाम धनवती था। धनकुमार धनवती का पाणिग्रहण हुआ और अनन्तः वसुन्धर मुनि के समोप मुनि दीक्षा लेकर यह दम्पति सौधर्म देवलोक में देवता बने। वहां की देवायु को भोगकर वैताढ्य के सूर्य तेजनगर शूर नृप के यहां धनकुमार, चित्रगति नाम से उत्पन्न हुआ और दक्षिण वैताढ्य में अनंगसिंह राजा के धनवती की आत्मा रत्नवती नाम की कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। दोनों का दम्पति के रूप में मिलना हुआ और अन्त में दयाधर मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर राज्य त्याग करके मुनि दीक्षा ले दोनों ही माहेन्द्र देवलोक में उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् पांचवें भव में दोनों अपराजित एवं प्रीतिमति के रूप में दम्पति हुए और दीक्षित होकर ग्यारहवें आरण देवलोक में उत्पन्न स्वर्ग सुख भोगे। और वहां की आयु पूर्ण करके हस्तनापुर में श्रीषेण राजा के पुत्र शंखकुमार के रूप में धनकुमार का जन्म हुआ और धनवती यहां पर यशोमति के रूप में जन्म ले शंख की पत्नी बनो। परन्तु श्रीषेण राजर्षि के द्वारा अपने भविष्य को श्रवण कर शंखकुमार ने शंखमुनि के रूप में घोर तपश्चरण करते हुए बीस स्थानों की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म का बन्धन कर अनशन में समाधि मरण करके अपराजित नामक अणुत्तर विमान में जन्म लिया। हे राजन् वहीं शंखकुमार अपराजित विमान की आयु को पूर्ण कर मैं यहां अरिष्टनेमि के रूप में जन्मा हूं। और राजमती कोई और नहीं, वही यशोमति अथवा धनवती की आत्मा है। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि राजमती का मेरे साथ आठ जन्मों से निरन्तर सम्बन्ध चला आ रहा है। इसी कारण इसके हृदय में मेरे प्रति विशेष अनुराग का अंकुर अंकुरित है।

पूर्वभव परम्परा को श्रवण कर उपस्थित श्रोता समूह में जीवनोत्थान की एक अद्भुत लहर दौड़ गई। वरदत्त नरेश ने प्रार्थना की कि भगवान् मैं गुरु स्वरूप आप चिन्तामणि को प्राप्त करके ही सन्तोष नहीं मान सकता। मेरा हृदय तो श्रीचरणों की छत्रछाया में रहकर स्वयं को रत्न बनाने की लालसा रखता है। अतः परमेश्वर की कृपा करके मुझे भी भवजल तारिणी भागवती दीक्षा प्रदान कीजियेगा।

इस प्रकार प्रार्थना करने पर वरदत्त नरेश के साथ साथ दो हजार क्षत्रियों को प्रभु ने मुनि दीक्षा प्रदान करके ११ गणधरों को स्थापना की और उपदेश को श्रवण करके जिनकी सुप्त आत्मा जाग्रत हो चुकी है, ऐसी अनेक कन्याओं से परिवृत राजपुत्री यक्षिणी के साथ साथ राजमती को भी मुनि दीक्षा प्रदान करके प्रभु ने महिला जाति के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया। यथा० उ० सू० अ० २२ में उत्तराध्ययन के बाईवें अध्ययन की तीसवी गाथा

अहसा भमर सन्निभे कुधफरण गसाहिए
सयमेव लुञ्चई केसे धिइमन्ता ववस्सिया ३०

वासुदेवोयणं भणइ लुत्तकेसं जिइन्दियं।
संसार सागरं घोरं तर कन्ने लहुं लहुं ३१

सा पव्वइया सन्ती पव्वावेसी तहिं बहुं।
सयणं परियणं चेव सीलवन्ता बहुस्सुया ३२

इसके अनुसार प्रभु के समीप दशों दशार्ह, उग्रसेन; वासुदेव, वलराम एवं प्रद्युम्न आदि कुमारों ने श्रावक व्रत अंगीकार कर गृहस्थ धर्म को धारण किया। और शिवादेवी, रोहिणीदेवी, देवकी एवं रुक्मिणी आदि अनेक महिलाओं ने स्वशक्ति के अनुसार श्राविका धर्म को धारण करके धर्माधार श्री संघरूपी महल का निर्माण किया। इस प्रकार समस्त विश्व के कल्याण के लिए धर्म तीर्थ की स्थापना करके भगवान अरिष्टनोमिनाथ ने बाइसवें तीर्थंकर पद को प्राप्त किया। और जगज्जीवों के हृदयों को निविड़ अन्धकार, हिंसा, झूठ, काम क्रोध, लोभ मोह, वासना विकारों को नष्ट कर विराजित मंगलमय आत्मिक ज्योति को जाग्रत करने के लिए ग्राम-ग्राम नगर-नगर एवं जनपदों में विचारना प्रारम्भ किया। और अरिष्टनेमि ने भी निर्ग्रंथ मुनिपद धारण किया।

❀—❀

द्रौपदी हरण

महाभारत युद्ध के पश्चात् पांडवों का समय हस्तिनापुर में आनन्द-पूर्वक व्यतीत हो रहा था। परन्तु जैसे दिन के पश्चात् रात्रि आती है और रात्रि के बाद दिन का प्रकाश। त्यों मनुष्य के जीवन में भी जहां पुण्य का स्निग्ध प्रकाश आनन्द मंगल के बाजे बजवाता है वहां अशुभ कर्मोदय की काली घटाओं के कठोर गर्जन को भी सहना पड़ता है। एकदा घूमते-फिरते नारद मुनि का हस्तिनापुर में आना हो गया। भाग्य वश वह सीधा द्रौपदी सती के महल में पहुंचा। परन्तु उसे अव्रती समझकर अन्य लोगों के समान द्रौपदी ने सत्कार नहीं किया जिससे क्रुद्ध होकर और बदले की भावना को लेकर नारद मुनि वहाँ से लौट पड़े और सोचने लगे कि जब तक इसे महलों से भ्रष्ट नहीं करूँगा तब तक इसका मस्तिष्क ठीक नहीं होगा। परन्तु कठिनता यह है कि तीन खंड में ऐसा कोई नहीं निकलेगा जो कि श्रीकृष्ण जी के भय के कारण इस कार्य में हाथ डाले। अत: बहुत सोच-समझ कर कलह प्रिय नारद धातकी खंड में पहुँचे। वहाँ कपिल वासुदेव की अधीनता में पद्मनरेश राज्य करता था। जिसकी राजधानी था अमरकंका। घूमते-फिरते नारद जी इसी की सभा मे पहुंचे और सम्मान प्राप्त किया और भोज-नार्थ नरेश जब नारद जी को अपने महल में ले गया तो दर्शनार्थ आई हुई रानियों का परिचय कराते हुए बड़े गर्व से बोला—कि महाराज आप सर्वत्र विचरण करते हैं। परन्तु जो शोभा मेरे रणवास की है वैसी कहीं अन्यत्र आपको दृष्टिगोचर नहीं हुई होगी। नारद ने अपने मनोरथ के अनुकूल समय देखकर खूब नमक-मिर्च लगाते हुए कहना प्रारम्भ किया कि—राजन् तुम तो कूपमंडूक की-सी बातें कर रहे हो—भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर में पांडव राज्य करते हैं। उनके अन्त:पुर में निवास करने वाली द्रौपदी महाराणी के सामने तुम्हारा रनिवास ऐसा है जैसा कि पौणिमा चन्द्र के सामने तारामंडल। राजन् यदि तुम उसे एक बार भी देख लो तो खाना-पीना भी भुल जाओ। इस प्रकार नारद ने पद्म के वासनासक्त हृदय में तूफान पैदा किया और नौ दो ग्यारह हुए।

इधर मोहान्ध पद्मनाभ ने विचार किया कि जम्बूद्वीप से द्रौपदी का अपहरण कर सकना मानव शक्ति से बाहर है। अत: पूर्वभव के मित्र

नपति देव की आराधना के द्वारा ही यह कार्य सिद्ध हो सकेगा। विचार करके पद्मनाभ ने विधिपूर्वक अपने मित्रदेव को स्मरण ना प्रारम्भ किया। अन्ततः वचनबद्ध देव ने उपस्थित होकर पूछा— पद्मनाभ, तुम्हारे कौन से इच्छित कार्य की सिद्धि करूं ?

आदर देते हुए देव को पद्मनाभ ने कहा—मैं द्रौपदी को चाहता हूं। : आप अविलम्ब उसे लाकर मुझे प्रदान कीजिये।

देव ने राजा को बहुत शिक्षा दी कि इस अनीति पथ पर अग्रसर कर अपने विनाश का बीज वपन मत कर। परन्तु "विनाश काले रीत बुद्धि" के अनुसार राजा अपने हठ से टस से मस न हुआ। और तत: वचनबद्ध होने के कारण देव वहां से चला और अपने महल में ती हुई द्रौपदी को अवस्वापिनी निद्रा के वशीभूत कर पलंग सहित ा कर पद्मनाभ राजा के महल में लाकर रख दिया और अपने स्थान स्थान कर गया।

जब द्रौपदी की निद्रा भंग हुई तो अपने आस-पास के अपरिचित ान को देखकर बड़ी अचकचाई और सोचने लगी, कि क्या मैं स्वप्न व रही हूँ या जागते हुए कोई देवमाया मुझे विभ्रम पैदा कर रही है। ह वह स्थान तो प्रतीत नहीं होता जहाँ मैं रात्रि को सोई थी ! सुन्दरी, सी प्रकार का भय मत करो, पीछे से एक अपरिचित स्वर सुनकर योंहि सती ने गर्दन घुमाकर देखा तो पर्दा हटा कर आते हुए राजा पर सकी दृष्टि पड़ी। अपना परिचय देते हुए उसने बतलाना प्रारम्भ कया—कि यह धातकी खड है। इस समय तुम अमरकंका राजधानी के वामी पद्मनाभ को सन्मुख देख रही हो। देवि, तुम्हारे गुण सौंदर्य के शीभूत होकर मैंने ही अपने मित्रदेव के द्वारा तुम्हें यहां मंगवाया है। म किसी प्रकार का संकोच न करते हुए अपने हृदय की बात मेरे न्मुख रखो। मैं विश्वास दिलाता हूं, यदि तुमने मुझे पति रूप में स्वी-ार कर लिया तो तुम्हारी प्रत्येक आशा को पूर्ण करने के लिए दास के मान मैं सदा सर्वदा तुम्हारे सन्मुख उपस्थित रहूंगा। द्रौपदी पर मानो ज्रापात हुआ। परन्तु अपनी असहाय स्थिति को लक्ष्य करके एवं कर्त्तव्य

पालन के लिए प्रत्युत्पन्न मति द्रौपदी ने राजा को कहा—नरेश, जब मैं आपके राज्य ही नहीं महलों में पहुँच चुकी हूँ तो आपके आधीन तो स्वयं ही हो गई हूँ। परन्तु मैं आपसे एक महीने का अवकाश चाहती हूं। क्योंकि मैंने संकल्प किया हुआ है कि आज दिन से एक मास पर्यन्त उपधान तप को स्वीकार करूंगी। भाग्यवश रात ही रात में मैं अपनी राजधानी से यहां पहुंचा दी गई हूँ। परन्तु तो भी क्या हुआ स्थान परिवर्तन से मैं और मेरा संकल्प तो परिवर्तित नहीं हो गया है। अत आप उदारभाव से मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करें। और ऐसा प्रबन्ध कर देवें कि इन तपस्या के दिनों में आप सहित कोई भी पुरुष मेरे समी में न आ पाये। राजा ने देखा, जब आसानी से काम बनता है तो व्य ही वितंडावाद खड़ा करने से क्या लाभ? अब भरत क्षेत्र से तो यह कोई आने से रहा कि जिसके कारण कोई व्यवधान उपस्थित हो, अत इसकी बात को मान लेने में ही लाभ है। ऐसा विचार करके सभी के कथनानुसार ही राजा ने सम्पूर्ण प्रबन्ध कर दिया और मन ही म खुशियां मनाते हुए एक मास व्यतीत होने की इन्तजार करने लगा।

  

उधर प्रातःकाल जब महलों में द्रौपदी को कहीं ढूंढ़ने पर भी नहीं पाया तो पांडवों को बहुत चिन्ता हुई। वन, पर्वत, अटवी, ग्राम, नगर आदि में कुशल योद्धाओं ने चप्पा-चप्पा स्थल छान मारा परन्तु निराशा के सिवाय और कुछ हाथ जब नहीं आया तो विवश हो माता कुन्ती द्वारिका पहुंची और समस्त समाचार बतला कर तीन खंड में द्रौपदी के अन्वेषण कार्य को अपने हाथ में लेने का आग्रह किया।

इधर वासुदेव श्रीकृष्ण जी विचार मग्न थे कि यह अकल्पनीय घटना कैसे घटित हुई, उधर अपने बोये हुए अनर्थ बीज के परिणाम को देखने के लिए नारद मुनि का भी पधारना हुआ। सत्कार पाकर आसन पर बैठते हुए नारद जी ने पूछा—वासुदेव देख रहा हूं आज आप किसी गम्भीर विचार में मग्न हैं। ऐसी क्या समस्या आज उपस्थित हो गई? श्रीकृष्ण जी ने कुन्ती के आगमन का वर्णन करके कहा—नारद जी आप

भी तो सर्वत्र विचरण करते हैं। यदि कहीं द्रौपदी के विषय में कुछ सुना हो या देखा हो तो बतलाइये न ! मन ही मन प्रसन्न होते हुए सिर खुजलाते मुंह फेर उठ कर चलते हुए नारद जी बोले—हां आं शायद वहीं थी। मैं धातकी खंड में अमरकंका राजधानी में पद्मनाभ से मिलने गया तो उसके महल में जाने पर मुझे भी आश्चर्य हुआ था कि द्रौपदी यहाँ कहां ? फिर यह सोच कर शायद मुझे भ्रम हो कुछ न कह कर चुपचाप ही चला आया। परन्तु अब निश्चिय हुआ कि वह द्रौपदी ही थी—कहते हुए नारद जी चलते बने।

श्रीकृष्ण जी को समझते हुए देर न लगी कि यह सब झगड़ा नारद का ही खड़ा किया हुआ है। उन्होंने तभी पांडवों को समाचार भेज दिया कि द्रौपदी अमरकंका में है। मैं उधर जा रहा हूं। यदि तुमने आना हो तो समुद्र के पूर्वी तट मागध तीर्थ पर शीघ्र ही आ मिलो। अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर वासुदेव शीघ्र ही समुद्र तट पर जा उपस्थित हुए। और समाचार मिलते ही पांचों पांडवों अपने अपने शस्त्रास्त्रों सहित संग्रामी रथ में बैठकर यहीं उनकी सेवा में उपस्थित आ हुए।

अपने सन्मुख फैली हुई विशाल जलराशि को देखकर पांडव कहने लगे—महाराज, जिसकी विक्षुब्ध लहरें हिमालय की सी उत्तुंगता को बनाती हैं। जिसके किनारों को अनुमान से भी नहीं जाना जाता, ऐसे इस लवणोदधि को कैसे पार किया जा सकेगा ?

मुस्कराते हुए वासुदेव श्रीकृष्ण जी ने कहा—तुम्हें इसकी क्या चिन्ता है। यह एक समुद्र तो क्या दस भी एकत्रित हो जायें तो भी हमारे कार्य में बाधक नहीं बन सकते। मात्र कार्य करने का उत्साह होना चाहिये। इसके पश्चात् समुद्र तट पर ही श्रीकृष्ण जी ने तेला तप अंगीकार करके अटल ध्यान पूर्वक लवणोदधि के अधिष्ठापक सुस्थित देव को स्मरण करना प्रारम्भ किया।

ठीक तृतीय दिवस दसों दिशाओं को आलोकित करता हुआ समुद्र का अधिनायक देव उपस्थित होकर कहने लगा—कहिये स्वामिन् आपके किस कार्य की सिद्धि करूं ?

वासुदेव बोले—आप जानते ही होंगे कि पद्मनाभ धातकी खंड द्रौपदी को ले गया है। आप ऐसा करें जिससे उस सती को वापिस लाया जा सके।

वासुदेव, यह कार्य पद्मनाभ के पूर्वभव के मित्र देव ने किया। यदि आप कहें तो मैं अभी ही द्रौपदी को लाकर आपके सामने उपस्थित कर दूं अथवा पद्मनाभ को उसके कुकृत्य का दण्ड भी देना चाहते हों तो, कहिये समस्त बल वाहन सहित उसे समुद्र में पटक दूं ? देव बोला। मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण जी ने कहा—नहीं, नहीं, यह सब तो हम स्वयं ही समयानुसार कर लेंगे। आप मात्र इतना कर दीजिये कि जिससे पांचों पाण्डवों के रथों सहित मेरा रथ पृथ्वी के समान ही समुद्र को लांघ जाये।

एवमस्तु—कहते ही लवणोदधि के अधिष्ठापक देव ने अपना कार्य पूर्ण किया और जल के ऊपर से ही छओं रथ धड़धड़ाते हुए अमरकंका राजधानी के बाहर के उद्यान में पहुंचे।

श्रीकृष्ण जी ने पत्र लिखा और सभी कुछ समझा अपने कुशल सारथी दारुक के हाथों पद्मनाभ के लिए प्रेषित किया।

शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित महायोद्धा दारूक, सीधा दरबार में पहुँचा, जहां पर कि मन मोदक तोड़ता हुआ पद्मनाभ द्रौपदी के ध्यान में बैठा हुआ था। जाते हुए दारुक ने राजसिंहासन को ठोकर मारी। और भाले की नोंक पर पत्र लगा कर देते हुए कहने लगा कि—ओ पद्मराजा—जिनके सहायक वासुदेव श्रीकृष्ण हैं, ऐसे पांडवों की पत्नी को तुमने जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र से हरण किया है। समुद्र के अधिष्ठापक द्वारा मार्ग देने से वे वासुदेव सहित तुम्हारे उद्यान में आ पहुंचे हैं, यदि तुम्हें अपना जीवन प्यारा है, तो शीघ्र ही द्रौपदी को वासुदेव के चरणों में उपस्थित कर दो।

वासुदेव है तो जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का, परन्तु मेरी प्रबल चतुरंगिणी के सामने यह छह बिचारे हैं ही किस गिनती में ? जा, भागजा, और कहदे कि मैं आ रहा हूं। यदि बचना है तो क्षमा याचना के लिए तैयार हो जाओ। आंखें तरेरते हुए पद्मनाभ ने कहा। दारुक सीधा

उद्यान में पहुँचा और समस्त वृतान्त कह सुनाया। श्रीकृष्ण जी मुस्कराये और पांडवों की तरफ देखकर बोले—कहो इस निर्लज्ज से तुम युद्ध करोगे या मैं युद्ध में उतरता हूं, तुम देखना चाहोगे ?

हाथ जोड़कर पांडव कहने लगे—नहीं महाराज आप हमें आज्ञा दीजिये और फिर देखिये, आज के भयंकर युद्ध में या तो हम नहीं या पद्मनाभ नहीं।

उधर समुद्र-सी तरंगयमान अपनी प्रवल चतुरंगिणी के साथ पद्मनाभ मैदान में आ पहुंचा था। अतः पांचों पांडवों ने भी देर नहीं लगाई। तत्क्षण ही अपने शास्त्रास्त्रों को सम्भाला और उत्साहपूर्वक रणस्थल की तरफ चले। उन्हें अपने बल विक्रम का वड़ा अभिमान था। अत: ख्याल था जाते ही भययंकर प्रहार करेंगे कि शत्रु को भागते ही बने। उधर पद्मनाभ के रथी. महारथी, योद्धाओं ने जब देखा मुकाविले में सिर्फ पांच रथ ही आ रहे हैं, तो वड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने चौगुने उत्साह से आगे वढ़कर चारों तरफ से पांडवों को घेर लिया और लगे श्रावण भादों को-सी ताक ताक कर भयंकर वाण वृष्टि करने। पांडव भी कोई सामान्य योद्धा नहीं थे। अपनी विजय की कामना से उन्होंने भी अपना समस्त वल विक्रम एवं रण कौशल दांव पर लगा रखा था। परन्तु विजय लक्ष्मी उन पर प्रसन्न नहीं हुई। प्रत्येक वार उनको मुंह की खानी पड़ रही थी। उनके कवच जीर्ण वस्त्र की तरह झीर-झीर हो चुके थे। सारा शरीर क्षत-विक्षत हो रहा था। उनके शस्त्रों की पकड़ शिथिल हो चुकी थी। समीप ही था कि वे पद्मनाभ के विछाये जाल में बन्दी वने हुए होते। परन्तु आगे वढ़ने की अपेक्षा उन्होंने पीछे हटना शुरु किया और अन्त पीठ दिखला भाग खड़े हुए और सीधे उद्यान में श्रीकृष्णजी के सन्मुख म्लान मुख उपस्थि हुए। नमस्कार करके हांफते हुए भर्राये स्वर से कहने लगे कि—वासुदेव अव आपकी ही शरण है। द्रौपदी को मुक्त करवाना तो दूर रहा यहां स्वयं को वचाने के लिए ही हमें आज रण से पीठ दिखानी पड़ी है। ऐसे शत्रु से हमारा आज तक पाला नहीं पड़ा था।

आश्वासन देते हुए माधव वोले—पांडवो तुम निश्चिन्त होकर यहीं विश्राम करो। ये पद्मनाभ वेचारा है ही किस खेत की मूली ? तुम

देखते जाओ कि मैं किस तरह से क्षणभर में ही इसके समस्त बल-वाहन का विध्वंस किये देता हूँ। वास्तव में तुमने पराजय तो तभी खरीद ली थी जबकि ये कहा कि या तो हम नहीं या पद्मनाभ नहीं। अब देखो मैं कहता हूँ आज पद्मनाभ नहीं, यमराज भी सन्मुख आया तो उसका भं मर्दन करके विजय पताका फहराऊँगा। कहते हुए पुरुषोत्तम तत्क्षण युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए। और पलक मारते ही उनका संग्रामी रथ धड़धड़ा हुए पद्मनाभ की सेना की तरफ वायु वेग से वढ़ चला। सेना को देखते ह वासुदेव ने अपने पाञ्चजन्य शंख को फूंका। मानो सैंकड़ों प्रलय काली मेघ गर्जे पड़े हों, ऐसा हृदय दहलाने वाला महा भयंकर रव उस शंख निकला। जिससे पद्मनाभ की सेना का एक तिहाई भाग तो ऐसे भागा जै ववर सिंह की दहाड़ से मृग समूह भाग खड़ा होता है पद्मनाभ राजा पुरातन सैनिक, सेनापति आदि सभी का हृदय सशंकित हो उठा। भय भीत हुए परस्पर वार्तालाप करने लगे कि यह शंखनाद तो स्पष्ट वतल रहा है कि विरोधी कोई सामान्य योद्धा नहीं वलिक हमारे स्वामी कपि वासुदेव हैं या उन्हीं के समान कोई अपर वासुदेव हैं। इधर सैनिक य विचार ही कर रहे थे कि मधुसूदन ने अपने शत्रुदल दलन शारंग धनुष क संभाला और एक भयानक टंकार की। जैसे कि सैंकड़ों विजलियां एक सा कड़क उठी हों। शत्रु दल में भगदड़ मच उठी, भागो, भागो कृतान्त अवता वासुदेव आ पहुंचे, भागो। मारे भय के सैनिक इधर-उधर भाग रहे थे इस अवस्था को देख पद्मनाभ भी अपने हौंसले को छोड़ वैठा। और र सहे सैनिकों, सैन्याधिकारियों को लेकर शीघ्र गति से रणभूमि से भागा औ अमरकंका राजधानी के द्वार वंद करवा कर सीधा अपने किले में पहुंचा।

इधर पद्मनाभ की यह करतूत देखकर श्रीकृष्ण जी क्रोध से प्रज्व लित हो उठे। और शीघ्र ही नगरकोट पर पहुँच कर रथ से उतरे औ वैक्रिय शक्ति से नृसिंह रूप धारण कर यमराज के समान दंष्ट्रा कटकटा हुए, भयंकर गर्जना करते हुए नगर द्वार पर पूरे वल से पाद प्रहार किया समस्त पृथ्वी कांप उठी। मानो भूचाल आ गया हो। नगरकोट क अग्र भाग टूट कर गिर पड़ा। नगर की विशाल अट्टालिकाएँ भूमिसा हो गईं। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच उठी। वासुदेव नृसिंह रूप

भयंकरता से गर्जना कर रहे और आगे बढ़ रहे थे। नगर निवासी भय के मारे कोई खड्डों में छिप गये। कोई पुष्करणियों, तालाबों में जा छुपे। सैकड़ों ही भय के मारे मूर्छित हो गये।

इस अवस्था को देख कर पद्मनाभ की अक्ल के तोते कूंच कर गये। कोई मार्ग जब न सूझ पड़ा तो सीधा महल में द्रौपदी सती के शरण में गया और गिड़गिडा कर कहने लगा कि हे देवी, मैंने जो अपराध किया है उसे क्षमा करो और यमराज के समान श्रीकृष्ण जी से रक्षा करो।

आश्वासन देते हुए सती ने कहा—राजन् यदि अपनी रक्षा चाहते हो तो मुझे आगे करके और स्वयं स्त्री के वस्त्र पहन कर वासुदेव के चरणों में गिर कर क्षमा मांगो। क्योंकि महापुरुषों की परम्परा है वह स्त्री पर हाथ नहीं उठाते हैं। इसके अलावा आपके बचने का अब कोई और मार्ग नहीं हैं।

द्रौपदी के बतलाये हुए तरीके के अनुसार ही पद्मनाभ जब श्रीकृष्ण जी के चरणों में गिरा तो वह महापुरुष शान्त हो गया। और राजा को अभय प्रदान कर, पांडवों को द्रौपदी सौंप दी। और जिस मार्ग से आये थे, रथारूढ़ होकर पाण्डवों के सहित उसी पथ से वापस लौट चले।

—पद्मनाभ का राज्यपतन—

धातकीखंड के वासुदेव कपिल उस समय भगवान मुनि सुव्रत स्वामी के समवसरण में उपस्थित थे, जबकि श्रीकृष्ण जी ने शंखनाद किया था। उसको सुनकर सशंकित हो वासुदेव ने पूछा कि भगवन्, मेरे समान ही महाघोष वाला यह शंखनाद कौन कर रहा है ?

यह वासुदेव श्रीकृष्ण के शंख का नाद है। भगवन् ने फरमाया।

आश्चर्यमग्न कपिल ने पूछा-कि भगवन् क्या एक स्थान पर दो वासुदेव हो सकते हैं ?

नहीं कपिल यह धातकी खंड के वासुदेव नहीं हैं। इसके पश्चात् द्रोपदी हरण एवं कृष्णगमन रुप सर्व वृत्तान्त भगवान् ने फरमाया। जिसे सुन कर कपिल वासुदेव प्रसन्न मुद्रा से बोल उठे, तब तो स्वामिन् मुझे जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के त्रिखंडेश्वर श्रीकृष्ण जी का आतिथ्य अवश्य करना चाहिए।

असम्भव, जैसे दो तीर्थंकर और दो चक्रवर्ती परस्पर नहीं मिल पाते त्यों ही किसी कारण वश एक क्षेत्र में दो वासुदेव आ भी जावें तो भी परस्पर मिल नहीं सकते भगवन् ने फरमाया। सर्वज्ञ वचन को सुना, परन्तु तो भी कपिल उत्सुकता वश अपने रथ में बैठकर उस तरफ को बढ़े कि जिस माग से श्रीकृष्ण जी ने घातकी खंड में पदार्पण किया था। जब समुद्र तट पर पहुंचे तो सुवर्ण एवं रजतवर्णी ध्वजा फहराती हुई समुद्र में दृष्टि गोचर हुई। और तभी वासुदेव कपिल ने शंखध्वनि करी कि-मैं कपिल वासुदेव आपसे मिलने को उत्सुकता को लेकर समुद्र तट पर आया हूँ। अतः आप वापिस आइये खेद है अब मैं बहुत दूर आ चुका हूं। कपिल को शंखध्वनि द्वारा उत्तर देते हुये श्रीकृष्ण जो ने विवशता प्रदर्शित करी। और क्षणभर में कपिल की दृष्टि से रथ ध्वजा भी ओझल हो गई।

सर्वज्ञ कथन को स्मरण करते हुए कपिल वासुदेव अमरकंका में पहुंचे और पद्मनाभ से पूछा कि यह राजधानी की अस्तव्यस्तता एवं विरूपता कैसी और क्यों है? उत्तर में श्रीकृष्ण जी के द्वारा प्रदर्शित शौर्य का वर्णन करते हुए गिड़गिड़ाया कि स्वामिन कितने दुख की वात है कि आपकी छत्र छाया में रहते हुए भी मेरी यह दुरवस्था हुई। वासुदेव ने फटकारा और बतलाया कि कैसे मुझे तेरे सम्पूर्ण कुकृत्य का ज्ञान हुआ। और तेरे जैसे दुराचारी को मैं राज्याधिकारी नहीं देखना चाहता। कहकर पद्मनाभ को राज्यच्युत कर दिया। और उसके पुत्र को राज्याभिषिक्त कर वासुदेव अपने स्थान को लौट गए।

— तीनलोक से मथुरा न्यारी —

इधर समुद्र तट पर पहुँच कर श्रीकृष्ण जी ने कहा कि-पांडवो जिस अधिष्ठायक की सहायता में हम समुद्र पार कर सके हैं, उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन भी आवश्यक है। अतः आप लोग तब तक गंगा महानदी को पार करें और मैं सुस्थित देव से विदा लेकर आता हूं।

पांचों पांडव वहां से चलकर सीधे गंगा तट पर पहुँचे। और नाव के द्वारा उस महा भयंकर प्रवाह वाली गंगा को पार किया। और विचार करने लगे कि-वासुदेव के बल को परीक्षा करनी चाहिए। देखें बिना नाव के वह कैसे गंगा को पार करते हैं। ऐसा सोचकर नाव को वापिस न जाने

दिया। वहीं एक तरफ को छिपा दिया और विनोद में काल यापन करने लगे।

इधर श्रीकृष्ण जी देव से विदा लेकर खुशी-खुशी गंगा तट पर पहुंचे तो देखा वहां कोई भी साधन ऐसा नहीं है, जिसके सहाय्य से गंगा को पार किया जा सके। तो उस अतुलित वलधाम अश्वों सहित एक भुजा से संग्रामी रथ को सम्भाला और दूसरी भुजा से गंगा प्रवाह को तैरना प्रारम्भ किया। परन्तु तैरते-तैरते जिस समय मध्य में पहुंचे तो काफी श्रान्त हो चुके थे। विचारने लगे कि पांडव कितने पराक्रमशाली हैं जो कि अबाधित गति से गंगा को पार कर गये। मुझे अब क्या करना चाहिए जिससे निर्विघ्न इस महा प्रवाह को पार किया जा सके।

वन हो चाहे बस्ती, रण हो चाहे महल, जल हो चाहे स्थल, परन्तु सर्वत्र प्राणी की रक्षा उसके पुण्य के द्वारा होती रहती है। श्रीकृष्ण जी विचार कर रहे थे कि नदी की अधिष्ठातृ देवी ने वासुदेव की चिन्ता को ज्ञान बल से जान कर तत्काल धारा के मध्य शुष्क स्थल का निर्माण किया। जहां पर कि घड़ी भर हरि ने विश्राम किया और पूर्ववत् गंगा प्रवाह को तैर कर किनारे पर पहुंचे। जहां पर आश्चर्यवान पांडवों ने स्वागत किया।

आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता व्यक्त करते हुए श्रीकृष्ण जी बोले कि-तुम इतने बलशील कि बिना वाहन के ही गंगा को पार कर आए परन्तु पद्म-नाभ से किस तरह पराजित हो गए!

नहीं स्वामिन! हमने गंगा को भुजाओं से नहीं पार किया, नाव द्वारा किया है। यदि ऐसा है तो तुमने मेरे लिए नाव को क्यों नहीं वापिस भेजा! श्रीकृष्ण जी ने पूछा। हमने सोचा कि वासुदेव के भुजबल की परीक्षा ली जाए, इसलिये नाव को वापिस नहीं भेजा। पांडवों ने भेद प्रकट किया।

अच्छा यह धृष्टता! अभी अमरकंका के विजय करने के समय में मेरे बल का परिचय नहीं मिल पाया था तुम्हें? इसीलिए अपने हितैषी के प्राणों के साथ भी उपहास करते हुए तुम्हें लज्जा अनुभव नहीं हुई! अच्छा अब अपनी करनी का फल भोगो। कहते हुए क्रुध होकर वासुदेव ने अपना

लोहदण्ड उठाया और पाँचों रथों को चकनाचूर कर दिया। और आदेश दिया कि—शीघ्र ही मेरे राज्य की सीमा से बाहर निकल जाओ।

पांडवों पर मानो वज्राघात हुआ। अपनी भूल पर पछताते हुए किंकर्तव्य विमूढ़ बने, अपनी छावनी में आये। और शीघ्रता से सेना हस्तिनापुर पहुंचकर अथ से इति पर्यन्त माता कुन्ती को वर्णन सुनाया। पर अब पछताये का होत है जब चिड़िया चुग गई खेत।" और कोई मार्ग देखते हुए माता कुन्ती सीधी द्वारिका नगरी में पहुंची जहां पर वासुदेव के आगमन पर एवं विजय के उपलक्ष्य में धूमधाम से उत्सव मनाया जा रहा था।

बुआ कुन्ती आई हैं, सुनकर श्रीकृष्ण जी ने आदर पूर्वक अभ्यर्थना करी और आगमन का कारण पूछा, तब कुन्ती ने द्रौपदी के पता लगाने और सकुल वापिस ले आने के लिए कृतज्ञता प्रगट करते हुए कहा कि हे वत्स! तुमने अपने धृष्ट भाई पांडवों को देश निकालने की सजा जो दी, सो तो ठीक है, परन्तु यह भी तो बताओ कि अब वे कहां निवास करें? क्योंकि तीन खण्ड से बाहर कोई जा नहीं सकता, और तीन खण्ड में ऐसा कोई स्थल नहीं आपका राज्य न हो?

बुआ जी, अब जब आपका पधारना हुआ है तो इसका भी हल निकल आयेगा आप उन्हें कहें कि—दक्षिणी समुद्रतट पर "पांडु मथुरा" नाम की नगरी वसा कर उसमें निश्चिन्त रूप में धर्म ध्यान करते हुए अपना निवास करें। मैं उस प्रदेश को आज से तीन खण्ड से पृथक् घोषित किये देता हूं।

सादर विदा होकर माता कुन्ती हस्तिापुर आई और वासुदेव की आज्ञानुसार पांडवों ने दक्षिणी समुद्रतट पर पांडुदेश की राजधानी पांडु-मथुरा का निर्माण कर निवास किया। और हस्तिनापुर के राज्य सिंहासन पर वासुदेव श्रीकृष्ण जी ने अपनी बहिन सुभद्रा के पौत्र, अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का राज्याभिषेक कर दिया।

देवकी का लाल गजसुकुमाल

धरित्री तल को अपने उपदेशामृत से सिंचन करते हुए अरिष्ठनेमि नाथ भद्दिलपुर नगर में पधारे। वहां पर नाग सार्थवाह की पत्नी सुलसा के छह पुत्र, जो कि वास्तव में देवकी माता के पुत्र थे, परन्तु हरिनैगमेषी देव ने जिन्हें अपहरण कर सुलसा को प्रदान किया था, अपनी पत्नियों सहित स्वर्गिक सुखों का सा अनुभव करते हुए विचरण करते थे।

भगवान के आत्म उद्बोधन को उन्होंने श्रवण किया और अनन्त जन्म मरण की परम्पर को समाप्त करने के लिए उनके चरणों में दीक्षित होकर द्वादशांग वाणी का अध्ययन किया। और यावज्जीवन के लिए वेले-वेले तप करने की प्रतिज्ञा धारण करके कर्मेन्धन को दग्ध करने को कटिबद्ध हुए। एकदा बिहार करते हुए भगवान अरिष्टनेमिनाथ जी के साथ ही द्वारिका नगरी के सहस्त्राम्र वन में इन छहों मुनियों का भी आगमन हुआ। पारणे का दिन था। प्रभु से आज्ञा प्राप्त कर अनीक यश और अनन्तसेन मुनि देवकी माता क घर में पधारे। माता के हृदय में एक अपूर्व आनन्दानुभूति थी। भक्ति तरंगों के साथ साथ वात्सल्यता भी रह रह के उमड़ पड़ती थी। परन्तु बहुत विचारने पर भी देव की माता इसका कारण न समझ पा रही थीं कि इन मुनियों के प्रति उसके हृदय में पुत्रवत् स्नेह क्यों जागृत हो रहा है। मुनियों को आहार पानी प्रतिलाभित किया और सात आठ कदम आगे बढ़कर विदाई दी। अपने सिंहासन पर बैठ कर माता अभी इसी घटना पर विचार ही कर रही थी कि देखा पुनरपि वही मुनि आहार पानी के लिए फिर गृह में प्रवेश कर रहे हैं। परन्तु वास्तव में राणी का यह दृष्टि भ्रम था। ये दूसरी टोली के रूप में आने वाले अजितसेन और निहतशत्रु महामुनि थे। जिन्होंने देवकी देवी से भोजन पानी ग्रहण किया और उद्यान की तरफ चल दिये। राज माता को इस उलझी गुत्थी का अभी समाधान प्राप्त करना बाकी था कि एक और शका ने हृदयस्थल को विक्षुब्ध कर डाला।

देखती क्या है कि वही मुनि फिर उसी के गृह में प्रवेश कर रहे हैं। हर्ष पूर्वक मुनियों की अभ्यर्थना की और इच्छानुसार भोजन पानी प्रतिलाभ कर बन्दन किया। और करबद्ध हो प्रार्थना की कि हे मुनिराज मैं एक शंका की निवृत्ति चाहती हूँ, यदि आप आज्ञा दें तो निवेदन करूं ?

अवश्य माता, आपको जो शंका हो प्रगट कीजिये। मुनियों ने अनुज्ञा प्रदान की। मुनिवर ! आपने थोड़ी देर बाद तीन बार मेरे महल को पवित्र किया पधार कर। यह तो मेरे लिए महान् सौभाग्य का कारण है। परन्तु मैं इसका रहस्य जानने को उत्सुक हूँ, कि यह आपका मेरे ऊपर महान अनुग्रह है इसलिए पधारना हुआ या दिशा भ्रम से अन्य महल समझ कर आपने दर्शन दिये अथवा नगरीवासियों की भावनाओं में कुछ ऐसा अन्तर आ गया है कि जिसके कारण महर्षियों के योग्य जो भोजन पानी होना चाहिये वह उनके यहां से प्राप्त नहीं हो पाता है।

मुनियों को समझने में देर नहीं लगी कि इस शंका का कारण क्या है। अपना परिचय देते हुए देवयश एवं मुनि शत्रुसेन भ्रम भेदन करना प्रारम्भ किया कि-देवी, हम भद्दिलपुर के नाग गाथापति एमं सुलसा देवी के छह पुत्र हैं। हम सब भाइयों का वर्ण, वपु, संस्थान बिल्कुल एकसा है। हम छओं भ्राता भगवान् अरिष्टनेमि नाथ जी की भवजल तारिणी वाणी को श्रवण कर सांसारिक वैभव को लात मार कर उनके चरण चञ्चरीक बने हैं। कर्म शत्रुओं से मुक्त होने के लिये बेले-बेले तप को अंगोकार करके विचरते हैं। आज हमारे पारण का दिन था। दो-दो की संख्या में हम छओं मुनि नगरी में आए हैं। आपके कथनानुसार मालुम होता है कि विधिवशात् हम छओं ही मुनि आपके भवन में आ पहुंचे हैं। परन्तु वास्तव में जो प्रथम बार आये हैं, उनका द्वितीय बार पदार्पण नहीं हुआ और दूसरी टोली में आने वाले मुनि हमसे पृथक् हैं। अतः हे माता हमें दिग्भ्रम आदि कोई कारण उपस्थित नहीं हुआ। प्रस्तुत हमारा एक सा रूप होने के कारण आप की दृष्टि भ्रम में पड़ गई हैं।

मुनियों के द्वारा किये गये स्पष्टीकरण से देवकी देवी को जहां समाधान एवं सन्तोष प्राप्त हुआ, वहां उन मुनियों के वापिस लौट जाने पर हार्दिक उद्वेग भी। उसकी आंखों के सामने चित्रपट की तरह वह दृश्य घूम गया, जबकि वह अभी कुंवारी थी कि और महा-तपोधन अमोघ वक्ता मुनि अतियुक्त ने भविष्यवाणी कही थी कि "देवकी, तेरे आठ महान् सन्तानें होंगी। भरत क्षेत्र में इस समय तेरे समान अन्य माता नहीं होगी।" क्या उस महामुनि की वाणी व्यर्थ सिद्ध नहीं हुई? मैं प्रत्यक्ष देख रही हूं इन छह मुनिवरों को मेरे कृष्ण में और इनमें नाम मात्र का ही तो अन्तर है। वरना हूबहू कृष्ण ही मालूम पड़ते हैं। धन्य तो इनकी माता है। जिस रत्नगर्भा ने इन हीरों को जन्म दिया है। जो यहां भी उत्तम हैं और भविष्य में भी उत्तम होंगे। मेरे साथ-साथ सन्तानें पैदा हुईं। परन्तु उस समय के स्मरण होते ही आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हे भगवान, ऐसा समय किसी के सामने न आये।

मैं उन सन्तानों के लिये माता नहीं, राक्षसी थी। उनका जन्म पीछे होता था परन्तु मृत्यु की काली घटाएं उनके भाग्याकाश पर पहले छा जाती थीं। मात्र एक कृष्ण के मेरी गोद सूनी की सूनी ही रही। कहां आठ महान पुत्रों की माता होना, कहां मन मसोस कर एक पर ही सन्तोष करना।

माता देवकी का हृदय ज्वालामुखी के समान इस समय अन्दर ही अन्दर शोकाग्नि से धधक रहा था। परन्तु इसी समय एक सुखद स्मृति ने उनके म्लान मुख पर मधुर मुस्कान बखेर दी। माता को स्मरण हो आया कि द्वारिका के उद्यान में तो त्रिलोकीनाथ विराज रहे हैं। उनकी चरण शरण में जाकर मैं भी अपने उद्वेग को क्यों न शान्त करूं। क्षणभर में देवकी देवी का धर्मयान सहस्राम्र वन की सीमा पर था। और भक्तिभाव से गद्‌गद होती हुई राजमाता, तीर्थंकरदेव की चरण धूलि को मस्तक से लगाते हुए जन्म-जन्म के कल्मषों को धो रही थी कि अज्ञानान्धकार को भेदन करने वाली देवाधिदेव की पवित्र वाणी उसके श्रवण रन्ध्रों से टकराई कि-देवकी देवी! उन छह मुनियों को देखकर मुनि अतिमुक्त की भविष्यवाणी के प्रति अविश्वास पैदा हो गया है।

सर्वज्ञदेव से भला कुछ छिपा रह सकता है ? अंजलिबद्ध राजमाता ने विनय से मस्तक झुकाते हुए कहा ।

परन्तु देवी, वह छओं ही तेरी कुक्षी से ही जन्मे हैं । सुलसा को बाल्यकाल में ही एक नैमित्तिक से पता चल गया था कि तू मृतवत्सा होगी । वह तभी से उसके बतलाये हुए उपाय को करती हुई शक्रेन्द्र के सेनापति देव हरिनैगमेषी को आराधना करती थी । जिससे सन्तुष्ट होकर देव ने वचन दिया था कि "मरे हुए बच्चे को पुनः जीवित कर देना यह तो किसी देव की शक्ति नहीं है । परन्तु तेरी भक्ति से प्रसन्न होकर तुझे छह ऐसे पुत्र दूंगा जो अनुपम होंगे । इसके पश्चात् तुम दानों को उस देव ने समान प्रसवा बनाया । सुलसा के मृतपुत्र को अदृश्यरूप से वह तुम्हारे निकट रख देता और तुम्हारे पुत्र को, जिसे तुम आसन्न मरणधर्मा समझ कर दुखित भाव के कारण देखती भी नहीं थीं, उठाकर सुलसा के पास पहुँचा देता था । इस प्रकार तुम्हारे छहों चरम शरीरी पुत्रों की रक्षा एवं पालना हुई । यह छहों मुनि वही तुम्हारे पुत्र हैं । देवमाया के कुहरे को हटाते हुए भगवान् ने फरमाया । अब देवकी देवी के हर्ष का पारावार न था । मुनियों को देखकर उसके हृदय में पुनरपि वात्सल्यता का स्रोत उमड़ पड़ा । स्तनों से दुग्धधारा प्रवाहित हो उठी । निर्निमेष रूप से उनको रूप-सी सुधा का देर तक पान करती रही । जब भावावेश में कुछ मन्दता आई तो माता देवकी ने अपने आप को सम्भाला । और प्रेमपूर्वक उन छहों मुनियों एवं तीर्थंकर देव को वन्दना करके आनन्दित होती हुई महल के लिये प्रस्थान किया ।

  

माता आज ऐसी क्या चिन्ता है कि जिसके कारण से आज आपको मेरे आगमन का पता नहीं लग पाया । अन्यथा मैं जब भी आता था आप दूर से देखते ही खिलखिला उठती थीं । प्रेमपूर्वक मेरे मस्तक को सूंघती, पीठ थपथपाती थीं । परन्तु आज आपने आंख उठाकर भी मुझे नहीं देखा । प्रातःकाल माता के चरणों में मस्तक रखते हुए वासुदेव श्रीकृष्ण जी ने विह्वलता से निवेदन किया ।

प्रेम पूर्वक मस्तक पर हाथ फेरते हुए माता देवकी बोली—वत्स, क्या बताऊँ, मुझे जहाँ एक तरफ परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। वहां दूसरी तरफ महाशोक से मेरा हृदय विदीर्ण भी हुए जा रहा है। जिसके कारण मुझे तुम्हारे आगमन का पता नहीं लग पाया।

माता ऐसो कौन सी घटना का परिणाम है यह ? श्रीकृष्ण जी ने उत्सुकता से पूछा। इसके पश्चात् माता ने विस्तार से मुनि आगमन अति-मुक्त की भविष्यवाणी, प्रभु द्वारा सत्य सूर्य का प्रकाश दर्शन आदि का वर्णन करके कहा—बेटा-तुम्हारे जिन छः ज्येष्ठ बन्धुओं को मैं मरा हुआ समझतो थो, वे वास्तव में जिन्दा हैं। धर्मज्योति से महाद्युतिवन्त हैं। अविनाशो अनन्त आत्मिक लक्ष्मो के स्वामो हैं। दूसरो तरफ तुम हो। जो यदुकुल केतु ही नहीं तीन खण्ड की ध्वजा हो। संसार के छत्र हो। इस बात का मुझे परम हर्ष है कि मेरी सब सन्तानें शेरे बबर हैं। परन्तु दुख इस बात का है कि मैं सात-सात महान आत्माओं की माता होते हुए भो एक सन्तान के प्रति मातृत्व को सफल नहीं कर पाई। किसी को अपनो गोद में नहीं खिला पाई दूध नहीं पिला पाई। मैं माता शब्द को लांक्षित करने वाली सिद्ध होरहो हूँ। बेटा यहो दुख मेरे हृदय को छलनी-छलनो बना रहा है।

माता, धैर्य रखो। मैं शीघ्र हो वह कार्य करूंगा जिससे आपकी आशा फलीभूत हो। कृष्ण बोले इस आश्वासन को सुनकर देवकी का विषाद पूर्ण आनन कमल की तरह खिल उठा क्योंकि वह जानती थी कि वासुदेव को वाणी कभो अन्यथा नहीं हुआ करतो।

× × ×

पौषधशाला महाप्रकाश से जगमगा रहो है। मानो साक्षात सूर्य हो वहां उतर आया हो।

श्रीकृष्ण जी तेला तप स्वीकार करके तोन दिन से मेरु सदृश अडोल अकंप रूप से ध्यानावास्थित हैं। उन्हीं के सामने दिव्य देवद्युतवन्त हरि नैगमेषी देव ने प्रगट होकर कहा—"वासुदेव आपकी इच्छा पूर्ण हागो।

आपको एक सहोदर प्राप्त होगा। परन्तु युवावस्था में वह मुनि दीक्षा को अंगीकार कर लेगा।"

श्रीकृष्ण जी ने हर्षित मना तप को पूर्ण किया। और यह हर्ष संवाद सर्वप्रथम माता के सामने प्रगट किया। तत्पश्चात् आवश्यक कार्यों में प्रवृत हुए।

सवा नौ मास के पश्चात् माता देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जो यादव कुल की प्रसन्नता का केन्द्र बन गया। गजसुकुमाल उसका नाम रक्खा गया। श्रीकृष्ण जी की आंखों का तारा, माता देवकी का दुलारा बाल्य क्रीडाओं से सबके हृदयों को मोहित करता हुआ अन्त में यौवन अवस्था में प्रविष्ट हुआ। माता पिता और भ्राता विचार करने लगे कि जो कन्या गजसुकुमाल के अनुरूप हो उसके साथ अब इस इसका पाणिग्रहण करवाना चाहिए।

× × ×

भ्राता जी आज कौनसा महोत्सव है जिसमें सम्मिलित होने के लिए आप इतनी तत्परता से तैयारी करवा रहे हैं दरबार में पहुँच श्रीकृष्ण जी से गजसुकुमाल ने पूछा।

प्रेमपूर्वक अपने पास बैठाते हुए बोले—भैया, द्वारिका के बाहिर सहस्राम्र उपवन में हमारे परम सौभाग्य से आज धर्म चक्रवर्ति भगवान अरिष्टनेमिनाथ पधारे हैं। उन्हीं के पवित्र दर्शन एवं भव जलतारिणी वाणी के श्रवण करने के लिए हम सब तैयार हो रहे हैं।

तब तो मुझे भी चलना चाहिये गजसुकुमाल ने उत्सुकता दिखाई।

अवश्य। और दूसरे ही क्षण श्रीकृष्ण जी अपने साथ ही हाथी पर बैठाकर गजसुकुमाल एवं चतुरंगिणी सैना के सहित द्वारिका के मध्य में से गुजरते हुए सहस्राम्र वन की तरफ रवाना हुए।

हठात् वासुदेव की दृष्टि क्रीडा रत एक बालिकाओं के झुंड में उलझी सी रह गई। तभी अपने कार्याधिकारी को बुलाकर उन्होंने आदेश दिया कि—देखो इस उपवन में वह जो स्वर्ण तार खचित कंदुक को लिये खड़ी है, उस कन्या के नामधाम अभिभावक का पता निकालो। और उनसे निवे-

दन करो कि वासुदेव अपने लघु भ्राता गजसुकुमाल की पत्नी के रूप में इस कन्या रत्न की याचना करते हैं। यदि वे तैयार हों तो उसे आदर सहित कुंवारे अन्तःपुर में राजसी मर्यादा के शिक्षण के लिए पहुंचा कर मुझे समाचार दो।

कुछ ही समय पश्चात् अधिकारो से मार्ग में पता लगा कि सोमशर्मा की वह कन्या, जिसका कि सोमा नाम है, माता पिता ने परम हर्ष से कुंवारे अन्तःपुर के लिए प्रेषित कर दी है।

दोनों भ्राता विभिन्न विचारों में तल्लीन सहस्राम्र वन में भगवान के चरण कमलों में उपस्थित हुए और गद्‌गद् भाव से बन्दन कर उपदेशामृत का पान करने लगे।

भगवान् ने विस्तार पूर्व समझाया कि—"किस प्रकार प्राणी अपने शुभाशुभ कर्मोदय के कारण कभी पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु एवं वनस्पति आदि में अनन्त काल तक जन्मता मरता रहता है। और फिर पुण्योदय से देव या मनुष्य भव को प्राप्त करके भी यदि धर्माराधन नहीं करता आशा तृष्णा, वासना, विकारों की गन्दगी के गर्त में ही डूबा रहता है तो नरक निगोद का मेहमान बनकर फिर अनन्त काल के लिए इस नरभव से हाथ धो बैठता है।"

भगवद् वाणी के सौरभ पर अनेक भक्त भ्रमरों का हृदय झूम उठा। इस समय उनमें गजसुकुमाल ही अग्रणी था। जो विचार कर रहा था कि कहां प्रभु की आत्मोत्थान की यह महान् प्रेरणा, और कहां भ्राता कृष्ण मुझे उस गन्दगी की दलदल में फंसाने के लिए तैयारी कर रहे हैं। नहीं कदापि नहीं, जीवन कल्याण की इस महान् स्वर्णिम वेला को मैं हाथ से नहीं जाने दूंगा। मैं वह कार्य करूंगा कि जिससे फिर भटकने का कभी अवसर ही न आने पाये।

पुरुष सिंह की धर्म गर्जना से गजसुकुमाल की सुप्त धार्मिक सिंह-वृति भी जाग उठी थी। उसके मुख-मण्डल पर एक अपूर्व तेज जग-मगा रहा था। वह वीर, धीर गम्भीर भावों से उठा और प्रभु के पावन चरणों पर मस्तक रख अंजलि वद्ध हो विनीत स्वर में वोला—परमेश्वर

मुझे भी शरणागत समझ कर इस पाप सागर से उभारो। मैं भी मुनि बनना चाहता हूं। परन्तु माता पिता से आज्ञा और ग्रहण कर जाऊं।

यास, जिसमें तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वही करो। परन्तु कार्य में विलम्ब मत करो। अनन्त करुणाशील ने अमृत उद्‌वोधन किया।

गजसुकुमाल को विचार मग्न देखकर धर्म कथा के पश्चात् श्रीकृष्ण जी प्रभु को वन्दन कर जा चुके थे। अपने लिए नियत यान पर आरुढ़ हो गजसुकुमाल माता के चरणों में उपस्थित हुआ और नमस्कार करके वोला—माता, आज मैंने प्रथम बार प्रभु दर्शन किये। पुत्र, तुझे धन्यवाद है। आज तुमने भिक्षुओं को प्राप्त करने का सच्चा लाभ ग्रहण किया। माता, मैंने तृप्ति दायिनी भगवद्वाणी को श्रवण कर उनके पादारविन्दों में अपने मस्तक को ही नहीं झुकाया प्रत्युत अपने हृदय पुष्प को भी समर्पित कर आया हूं।

शत सहस्र वर्ष जीओ वेटा, तुमने अपने कानों को ही पवित्र नहीं किया प्रत्युत प्रभु चरण रज से तुम्हारा मस्तक भी पवित्र हुआ, समस्त शरीर को भी तुमने अमृतमय बना लिया। आज माता ने कुमारों को दुलराते हुए शिक्षा प्रदान की।

गजसुकुमाल ने देखा कि माता अभी मेरे वास्तविक अभिप्राय को समझ नहीं पाई है। अतः स्पष्ट रूप से कहना शुरु किया कि—माता! मैंने निर्णय कर लिया है कि जन्म-मरण की परम्परा को सर्वदा के लिए समाप्त करके लिए प्रभु चरणों में मुनि दीक्षा को अंगीकार करूंगा।

माता के हृदय पर मानो वज्रापात हुआ। वह क्षण भर के लिए सुध-बुध को खो वैठी। वह जानती थी कि कृष्ण के समान ही इस वलवीर की वाणी भी अपरिवर्तनीय होती है। उसको आंखों के सामने अंधकार घूमने लगा। मोह वश अश्रुपात करती हुई देवकी देवी ने ही नहीं, वसुदेव पिता एवं भ्राता श्रीकृष्ण जी आदि सभी ने चाहा कि कुमार अभी गृहस्थ में ही निवास करे। परन्तु जिस गज ने अपने पैरों की जंजीरों को तोड़ डाला हो उसे कौन रोक सकता है। तीन खण्ड के राज-ताज को कुमार के मस्तक पर रख कर माधव ने चाहा कि आशा तृष्णा के पिंजरे में

सको बन्दी बना डालू । परन्तु कुमार का मन पंछी स्वतन्त्रता के वायु-ण्डल का आनन्द अनुभव कर चुका था । अतः उस पिंजरे में बन्द होना ो दूर, उसकी तरफ आंख भर कर देखना भी इष्ट नहीं था उसे ।

अन्ततः दीक्षा की तैयारियां हुईं । पहले से ही अलकापुरी सी द्वारिका ाज सजी धजी दुलहिन सी आकर्षक बनी हुइ थी । अर्ध चक्रवर्ती का ा वैभव दोक्षा की साज-सज्जा में जुटा हुआ था । आगे-आगे विजय ाहिनी और दशों दिशाओं को मधुर-मधुर स्वर लहरी से गुंजायमान रते हुए वाद्यों के साथ यादव कुल से परिवृत वैरागी गजसुकुमाल, तीन-ोक के नाथ भगवान अरिष्टनेमिनाथ के चरणों में उपस्थित हुए ।

भगवन् ! शिष्य रूप भिक्षा को स्वीकार कीजिये । संसार के जन्म जरा-मरण भय से उद्विग्न बने इस हमारी आंखों के तारे को अपनी चरण शरण प्रदान करके वह पथ प्रदर्शन कीजिये, कि जिससे मेरे समान किसी अन्य माता को कभी रोने का अवसर उपस्थित न हो । मुनि वेष धारण किये हुए गजसुकुमाल को प्रभु चरणों में अर्पित करते हुए देवकी माता ने साश्रु प्रार्थना करी । भगवन् ने महाव्रत में गजसुकुमाल को दीक्षित किया । यादव परिवार प्रेमपूर्वक वन्दना नकस्कार करके जब बिदा हो गया तो गजसुकुमाल मुनि प्रभु चरणों में पुनः उपस्थित हुए और प्रार्थना करी कि, प्रभो माता ने जा विनती की थो, वह पूर्ण करना मेरा प्राथमिक कर्तव्य है । अतः वह विधि फरमाइये कि जिससे शीघ्रातिशीघ्र मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकूं ।

भूत भविष्यत् वर्तमान की घटनाए हस्तामलकवत् जिन को प्रतिभा-सित रहती हैं, ऐसे उस सर्वज्ञ देव ने गजसुकुमाल की आशाओं को पूर्ण होने के मार्ग का उपदेश देते हुए फरमाया कि वत्स ! यदि इसी जन्म में अपने जन्म-जन्मान्तरों के ऋण से उऋण होने की इच्छा करते हो तो भिक्षु की बारहवीं प्रतिज्ञा को वहन करो ।

धन्य भगवन् धन्य ! जन्म-जन्म के इस दरिद्री को अनन्त आत्मिक-लक्ष्मी प्राप्त करने का आपन निकटतम का पथ प्रदान किया ।

गुणानुवाद करते हुए मुनि गजसुकुमाल ने प्रभु चरणों को स्पर्श किया और भिक्षु की बारहवीं प्रतिज्ञा की विधि के अनुसार महाकाल

स्मशान के एकान्त स्थल में शारीरिक ममत्व को त्याग कर आत्म ध्यान
में तल्लीन हो गये।

उधर समिधा को लेने के लिए गया हुआ सोमशर्मा (सोमिल) नगर
को वापिस लौटता हुआ भाग्यवशात् उसी तरफ से निकला जहाँ पर वि
मुनि गजसुकुमाल आत्मध्यान में तल्लीन थे।

मुनि पर दृष्टि पड़ते ही उसे पहचानने में देर नहीं लगी, कि यही
वह कुमार है, जिसके लिए मेरी सोमा की याचना की गई थी। पर
इस दुष्ट को यदि मुनि ही बनना था तो मेरी कन्या के जीवन को लांछि
क्यों किया ? अब उसका क्या होगा ? आदि विचारते-विचारते सोम शर्मा
के हृदय में प्रतिशोधाग्नि धधक उठी। मानवता विनष्ट हो गई। समी
के ही पोखर (तालाब) से गीली मिट्टी ली, और मुनि के मुंडित मस्त
पर गोल पाल सो लगा दी। और जलती चिता के अंगारों को ठीकरे में
भर कर मुनि के मस्तक पर उढ़ेल दिये और इस अमानुषिक लोमहर्षण
कृत्य को करके दबे पैरों से चोर की तरह अपने घर को भागा कि कहीं
कोई मुझे देख न ले।

मुनि का सिर अंगीठी बना हुआ खिचड़ी की तरह खदबदा रहा
रहा था। परन्तु कोटिशः धन्य है उस महाश्रमण को, जो विचार कर रहे
हैं कि इस अग्नि की क्या शक्ति जो मुझ आत्माराम को जला सके। मैंने
नरकों में इससे भी लाखों गुना तीव्र अग्नि को एक-दो-तीन बार नहीं,
हजारों लाखों करोड़ों बार नहीं, अनन्त बार अनुभव किया। परन्तु तब
न मरा, तो अब इसने मेरा क्या बिगाड़ना है, जो मैं दुर्लभ आत्मिक
लक्ष्य से विचलित होऊं ? परवश रूप से मैंने कौन-कौन से कष्टों को नहीं
झेला ? परन्तु जो मेरे कर्म रूपी मल को जला कर मुझे कुन्दन बना रहे
हैं, जन्म-मरण की फौलादी बेड़ियों को गला कर मुझे स्वतन्त्रता प्रदान
करने वाले हैं, जिस शरीर रूपी कैदखाने में न मालूम कब तक मुझे बन्दी
रूप में पड़े रहना पड़ता, उससे शीघ्र ही मुक्ति दिला कर, परम लक्ष्य पर
पहुंचाने में मेरे सखा रूप हैं, उस अग्निदेव को मैं दूर क्यों करने लगा?
धन्य है, उस महा उपकारी को, जिसने ध्येय प्राप्ति के लिए ऐसा शीघ्र-
गामी यान प्रदान किया है। इस प्रकार क्षमा समता रूपी महा सुधा की

न करते-करते मुनि आत्मोत्थान की सोपानों के पार करते हुए क्षप्पक
णी पर पहुंचे। अग्नि स्थूल पौद्गलिक शरीर को नाश करने पर तुली
ई थी, तो मुनि सूक्ष्म पौद्गलिक शरीर को शुक्ल ध्यानाग्नि के द्वारा
करने में जुटे हुए थे।

अन्त में विजय आत्मदेव की हुई। स्थूल शरीर पीछे जमीन पर
रा कि मुनि समस्त कर्मेन्धन को नष्ट कर अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन की
ाश्वत महाज्योति को प्राप्त कर लोकाग्र भाग पर सिद्ध परमात्म रूप
पहले जा विराजे।

  

यादव परिवार, विशेष कर श्रीकृष्ण जी एवं पूज्य माता-पिता शरीर
तो अपने-अपने महलों में शयन कर रहे थे, परन्तु मन और मस्तिष्क
लझे हुए थे गजसुकुमाल में। आखिर प्रभात हुआ। और दैनिक कृत्यों
शीघ्रतया निवृत्त हो वासुदेव ने चतुरंगिणी के साथ साज-सज्जा पूर्वक
हस्राम्र उपवन की तरफ प्रस्थान किया।

मार्ग में क्या देखते हैं कि जरा से जर्जरित वृद्ध पुरुष, एक
वशाल ईंट राशि से कांपते हाथों द्वारा एक-एक ईंट उठाता है और
नर्माण किये जाने वाले एक गृह की तरफ ले जा रहा है। उस राष्ट्र-
ायक के हृदय में करुणा की स्रोतस्विनी उमड़ पड़ी और आगे बढ़ कर लगे
अपने हाथों से उस वृद्ध की ईंटों को उठाने। पीछे-पीछे चलने वाले
वेशाल जन-समूह को समझाने की आवश्यकता नहीं पड़ी कि अब उनका
क्या कर्तव्य है? पलक झपकते ही उस वृद्ध का समस्त भार हल्का हो
चुका था। और खुशी-खुशी सबके कदम बढ़ रहे थे भगवद् विराजित स्थल
की ओर।

"भगवन्! यादवों की आँखों का तारा और आपके लघु शिष्य मुनि
गजसुकुमाल को मुनि मंडली में अनुपस्थित पाता हूँ। मैं उद्यान के किस
कक्ष में उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त कर सकता हूं? प्रभु के चरणारविन्दों
का स्पर्श करते हुए श्रीकृष्ण जी ने पूछा अब नहीं, वासुदेव इन चर्म

चक्षुओं से तुम कदापि दर्शन नहीं पा सकोगे गजमुनि को प्रभु ने फरमाया।

भगवन्, ऐसी कौनसी अघटित घटना के कारण आप ऐसा फरमा रहे हैं। आश्चर्य चकित एवं विस्फारित नेत्रों से श्रीकृष्ण जी ने प्रश्न किया।

वासुदेव, समस्त कर्म बन्धनों को विनष्ट कर गजमुनि सिद्ध बुद्ध बन चुके हैं। मोक्षधाम पधार गये हैं, सर्वज्ञदेव ने फरमाया।

भगवन्! एक रात्रि में ही मोक्ष ? विस्मयान्वित श्रीकृष्ण जी ने प्रश्न किया।

वासुदेव, जिस समय तुम मेरे दर्शनों के लिए आ रहे थे, उस समय तुमने जरा जर्जरित एक वृद्ध की सहायता की थी न ईंटों के विशाल ढेर को हटाने में ? प्रभू ने पूछा।

हां भगवन् कुछ कर्तव्य का अवसर प्राप्त हो गया था, विनम्रता से श्रीकृष्ण जी ने निवेदन किया।

बस इसी प्रकार गजसुकुमाल को भी एक सहायक प्राप्त हो गया जिसने सिद्धत्व को प्राप्त करने में उसकी महान् सहायता की है। इसके पश्चात् श्री कृष्ण के पूछने पर भगवन् ने सोमशर्मा के कृत्य की समस्त कहानी सुनाई।

इस घटना के श्रवण से समस्त परिषद् स्तब्ध रह गई। श्रीकृष्ण जी क्षण भर के लिए मूर्छित हो गये सब के हृदय विदीर्ण हुए जा रहे थे। अनेक यादव सुभट उच्च स्वर से रुदन करने लगे। अनेक क्रुद्ध हो दांत किटकिटाने लगे कि वह कौन नराधम है कि जिसने यह दुस्साहस किया है ? अन्त में कुछ सावधान होकर श्रीकृष्ण ने पूछा कि—प्रभो ! हमें कैसे पता लगे कि यह दुष्कृत्य करने वाला कौन है ?

वासुदेव जब तुम नगरी में प्रवेश कर रहे होगे तब तुम्हें देख कर जो सहसा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाय और सिर फटने से मर जाये, बस समझ लेना कि यही वह पुरुष है जिसने कर्मेन्धन को भस्म करने में गजमुनि को सहायता पहुँचाई थी। प्रभु ने उत्तर दिया।

इसके पश्चात् जी ने गजसुकुमाल के शरीर की उत्तर क्रिया करी और शोकार्त भाव से द्वारिका का तरफ प्रस्थान दिया।

प्रातःकाल होने पर सोमशर्मा को जब पता लगा कि श्रीकृष्ण जी भगवान अरिष्टनेमि नाथ के दर्शन करने के लिए गये हैं तो बहुत घबराया। सोचने लगा कि सर्वज्ञ देव से भूत भविष्य वर्तमान की कोई घटना छुपी हुई नहीं है। श्रीकृष्ण जो जब अपने भाई को नहीं देखेंगे तो उसके विषय में अवश्य पूछेंगे। और जिनेन्द्र देव से मेरी करतूत को जान कर के वासुदेव पता नहीं मेरी क्या दुर्गति बनायेंगे। अतः यही श्रेष्ठ है कि जब तक वह वापिस नगरी में नहीं लौटते हैं तब तक यहां से भाग चलूँ।

कर्म कहते हैं रे मानव, तू भागता है कार में और मैं चलता हूं तार में। जिस समय सोमशर्मा द्वारिका नगरी के मुख्य द्वार पर पहुंचा तो अपने सन्मुख श्रीकृष्ण जी को पाया। जो शोक मग्न निश्शब्द रूप से नगरी की तरफ आ रहे थे।

चोर की दाढी में तिनका— सोमशर्मा ने समझा कि भगवान ने श्रीकृष्ण जी को वता दिया मालूम होता है कि मैं इस मार्ग से भाग जाना चाहता हूं तभी तो ध्वजा वाजे आदि सब बन्द करके चुपचाप इस तरफ को श्रीकृष्ण जी चले आ रहे हैं कि मैं भाग न सकूं!

वासुदेव को अपने सन्मुख देख कर सोमशर्मा कांप उठा, और भय के मारे पछाड़ खाकर गिर पड़ा। सिर फट गया और प्राण पखेरू कूँच कर गये।

चिन्हानुसार समझते हुए देर न लगी कि यह नराधम कौन है? श्रीकृष्ण जी ने आज्ञा दी अनुचरों को, कि इसके पैरों में रस्सी बांध कर श्मशान में फेंक दो। और जहां-जहां से इसका शव निकले उस-उस स्थल पर पानी छिड़क कर शुद्ध बनाओ।

मुनि गजसुकुमाल के वैराग्य उपसर्ग एवं उनकी प्रदर्शित धीरता का यादव परिवार पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ा। इससे प्रभावित्त होकर वसुदेव से भिन्न नव ही दशार्हों ने, माता शिवदेवी ने प्रभु के सात सहोदर बन्धुओं ने एवं श्रीकृष्ण जी के पुत्र ढंढणकुमार आदि अनेक राजकुमारों ने एवं कुमारिकाओं ने दीक्षा अंगीकार कर अपने जीवन को वैराग्य पथ पर अग्रसर किया।

—o—

द्वारिका दहन

श्रीकृष्ण जी द्वारिकापुरी में सुखपूर्वक राज्य-काज चला रहे थे। एक दिन वे अपने दरबार में आसनारूढ़ थे कि उन्हें द्वारिकापुरी के उद्यान में अरिष्टनेमि भगवान् के पधारने का समाचार मिला। सभी कार्य छोड़ कर वे बलराम और अपने परिवार के अन्य सदस्यों सहित भगवान् के दर्शनार्थ चल पड़े।

भगवान् को विधिवत वन्दना करके श्रीकृष्ण और बलराम चरणों में बैठ गए। भगवान् से कृष्ण पूछ बैठे—"आप तो जानते हैं कि द्वारिकापुरी पृथ्वी पर अलकापुरी के समान है। परन्तु जब से हस्तिनापुर का सौंदर्य महायुद्ध में स्वाहा हुआ है तभी से द्वारिका के भविष्य के सम्बन्ध में मेरे हृदय में प्रश्न उठा करते हैं। आप तो सर्वज्ञ हैं। कृपया यह तो बताइये कि स्वर्गधाम के समान सुख सम्पदा सम्पन्न सुन्दर नगरी का भविष्य क्या है ?

भगवान् बोले—"कृष्ण ! संसार में जो कुछ तुम देख रहे हो वह नश्वर है। प्रकृति और आत्मा की बात जाने दो, वे तो अजर अमर हैं, पर यह शरीर, यह रूप, यह सम्पदा, यह सौन्दर्य, जो कुछ तुम्हें मोह जाल में फांसता है नाशवान है। इसी भूमि पर तुम से पहले भी कई वासुदेव हो चुके हैं और कई द्वारिकाएं बसी हैं और उजड़ी हैं। यह चक्र यूं ही चला आ रहा है। अपनी सुन्दर नगरी पर गर्व न करना एक दिन यह भी नष्ट हो जायेगी।"

भगवान् की वाणी सुन कर श्रीकृष्ण का दिल धड़कने लगा। उन्होंने पुनः प्रश्न किया—"भगवान ! यह परम सुन्दर नगरी नष्ट हो जायेगी ? परन्तु कैसे ?

"तुम ने प्रश्न किया है तो सुनो—भगवान् ने कहना आरम्भ किया। दीपायन ऋषि के कारण तुम्हारी द्वारिका जल कर राख हो जायेगी। तुम्हारे परिवार के लोग उस तापस को मदिरा के नशे में चूर होकर परेशान करेंगे और ऋषि काल करके अग्निकुमार देव के रूप में जन्म लेगा। बस वही द्वारिका को जला कर राख कर देगा।"

"फिर क्या होगा भगवन् ?"

"फिर द्वारिका में तुम दो भाई बचोगे और इधर-उधर भटकते फिरोगे। जराकुमार के हाथों तुम्हारा बध होगा-" अरिष्टनेमि जी ने कहा।

श्रीकृष्ण कुछ देरि के लिए मौन हो गए। परन्तु उनके मन में खेद और भय का मिश्रित ज्वारभाटा आ रहा था, बिल्कुल सागर में आते ज्वार भाटे की ही भांति।

अरिष्टनेमि जी ने पुनः कहा-"कृष्ण तुम तो संसार चक्र से परिचित हो। धर्म का मर्म तुम्हें ज्ञात है। तुम आवागमन के चक्र से पूर्णतया परिचित हो। कर्मों के कारण आत्मा बार-बार इस संसार में भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण करता है। और उस समय तक यह चक्र चलता रहता है जब तक आत्मा 'शिव' पद को प्राप्त नहीं होता। इसलिए तुम्हें अपनी मृत्यु की बात सुन कर दुःख नहीं करना चाहिये ?

भगवान् अरिष्टनेमि जी के मुख से यह बातें सुन कर श्रीकृष्ण बोले-- "भगवन् ! मैं अपनो मृत्यु की बात से इतना दुखित नहीं, दुखित हूं तो इसलिए कि सती गांधारो ने क्रुद्ध होकर जो भविष्य वाणी की थी, वह सत्य सिद्ध हो जायेगी। जबकि गांधारी द्वारा कही बात तथ्यों से निकाले गए परिणाम पर आधारित नहीं थी। उसने तो अपने पुत्रों क शोक में ऐसा कह दिया। फिर मैं नहीं चाहता कि मनुष्य जीवन प्राप्त करके मैं इस शुभ अवसर को यूं ही जाने दूं। इस लिए क्या मुझे भी आवागमन के चक्र में इसो प्रकार फंसा रहना होगा, यही प्रश्न और यही शंका है जो मेरे मन को मथे डाल रही है। आप मेरे भविष्य के बारे में भी तो बतायें।"

भगवान् ने कहा—"कृष्ण ! इस संसार से तुम शीलाधाम जाओगे और वहाँ से उत्सर्पणी काल में पुण्डरोक देश के अन्तर्गत शतद्वारा नगरी में जन्म लोगे और तीर्थंकर बनोगे।"

श्रीकृष्ण को भगवान की यह बात सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा—"प्रभु ! क्या इस जीवन में ही मुनिव्रत धारण करके घोर तपस्या के बल पर मैं अपना कुछ और

कल्याण नहीं कर सकता ? "नहीं, गोविन्द ! तुम संयम धारण कर हा नहीं पाओगे ।" "प्रभु ! आप ता सारे संसार को आलोकित कर रहे हैं। सभी का आप पथ प्रदर्शन करते हैं, सभी के लिए मुक्ति की राहें खोलते हैं। क्या हम किसी उपाय से द्वारिका और द्वारिका वासियों को नहीं बचा सकते ? कोई उपाय हो तो बताइये ।"

श्री कृष्ण के प्रश्न के उतर में भगवान कहने लगे—"कृष्ण द्वारिका को बचाने का एक ही उपाय है वह यह कि द्वारिका निवासी धार्मिक कर्मों में लग जायें। पाप और अधर्म को अपने पास भी न आने दें। दान, शील और तप के सहारे द्वारिका की रक्षा की जा सकती है। जब तक लोग धर्म दान में लगे रहेंगे। अग्निकुमार देव चाहते हुए भी द्वारिका को न जला सकेगा। पर जब भी धर्म की ओर से उदासीनता बरती जायेगी, तभी अग्निकुमार का दाव चल जायेगा। रही बात द्वारिका वासियों को अग्नि से बचाने की, तो जो लोग द्वारिका दहन से पूर्व ही द्वारिका छोड़ देंगे, वह बच जायेंगे। वरना तुम दो भाइयों के अतिरिक्त कोई न बच पाएगा। श्रीकृष्ण और बलराज ने भगवान को बन्दना की और अपने महल को लौट आए।

  

क्या सोच रहे हो केशव ?"

सोच रहा हूं कि हमें पुरुषार्थ करना चाहिए। हमें धैर्य से कर्म में जुट जाना है। ऐसे कर्म हमें करने चाहिएं जिससे हम द्वारिका को बचा सकें। जब त्याग द्वारा आत्मा शिव पद तक को प्राप्त कर सकता है,तो फिर हम अपनी, अपनी द्वारिका की और द्वारिका वासियों की रक्षा क्यों नहीं कर सकते ? यह सोच कर मैं इस विचार में हूं कि क्या किया जाये, जिससे हम दुष्परिणामों से बच सके।"

"हां, मैं भी इस विषय में सोचता रहा हूं। यद्यपि प्रभु की वाणी कभी असत्य सिद्ध नहीं हो सकती। होगा वही जो अरिष्टनेमि जी ने कहा है, फिर भी हमें पुरुषार्थ तो करना ही चाहिए। तो फिर तुम्हारा क्या विचार है ?

"मैं समझता हूं। हमें सर्वप्रथम उत्पातों, अनाचार और दुष्कर्मों के मूल पर चोट करनी चाहिए। कुछ ऐसा करा जाये कि द्वीपायन ऋषि को यादव वंशी क्लेश पहुचाने का कारण न बनें।"

"बात तो तुम्हारी ठीक है, पर इसके लिए कोई उपाय तो हो।"
"उपाय भी है, वह यह है कि सर्वप्रथम मद्यपान का बहिष्कार हो। द्वारिका पुरी में कोई भी मद्यपान न करे। मद्य के सारे भण्डार को गिरनारी कादम्बरी गुफा के निकट स्थित कुण्ड में फिकवा दिया जाये। और फिर मद्य बनाने की किसी को आज्ञा न हो।"

"ठीक है, मेरा भी यही विचार है। पर प्रश्न यह है कि क्या अकेले राजाज्ञा से प्रभावित होकर ही नगर वासी मद्यपान को छोड़ कर धर्म-ध्यान में लग जायेंगे?"

श्रीकृष्ण की बात पर बलराम विचार करने लगे। दोनों कुछ देर सोचते रहे। और अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि भगवान अरिष्टनेमि जी की भविष्य वाणी का प्रचार करा दिया जाये। जब नगरवासी भगवान की भविष्य वाणी सुनेंगे तो स्वयमेव ही अपना मार्ग निश्चित कर लेंगे।

  

श्रीकृष्ण की ओर से कराया गया प्रचार सुन कर नगरवासी सहम गए। वे स्थान-स्थान पर एकत्रित होकर भगवान अरिष्टनेमि जी की भविष्य वाणी की चर्चा करने लगे। कुछ लोग दीपायन ऋषि के पास भी गये। बोले—"विद्वद्वर! आपने भगवान् अरिष्टनेमि जी की भविष्य वाणी तो सुनी ही होगी। हमारी स्वर्गधाम समान यह द्वारिका आपके कारण भस्म हो जायेगी। जिस नगरी को स्वय देवताओं ने रचा हो, वही जल कर राख हो जायेगी। यह सोच कर भी हमारे हृदय कांप रहे है। श्रीकृष्ण जैसे सत्यनिष्ठ त्रिखण्ड पति महापुरुष की राजधानी में हम लोगों ने जिस सुख को भोगा है, कदाचित पृथ्वी पर वह सुख किसी नगर के निवासियों को न मिला हो। उनकी कृपा से हम धरा पर ही स्वर्ग भोगते रहे। अब आप ही बताइये कि इस ऐश्वर्य सम्पन्न नगरी को

बचाने का क्या उपाय है ? क्या हम लोग अपनी रक्षा के लिए इस नगर को छोड़कर चले जायें ? उस नगर को छोड़ दें जिसकी धरती में हमारे बालकों के नाल गढ़े हैं। जिसमें रह कर हमने कभी किसी दुःख का दर्शन न किया, जहाँ रह कर पीड़ा के नाम को भी हम भूल चुके हैं। जिसमें हमने प्रेम तथा बन्धुत्व के उच्चादर्श को देखा है। जहाँ अत्याचार और अन्याय का नाम तक नहीं है। इन ऊँचे-ऊँचे भवनों को, इन प्यारे-प्यारे उद्यानों को, और इस सर्व प्रकार से सुखदाई वातावरण को त्याग कर हम कहीं और भटकने के लिए चले जायें। ओह ! यह तो सोच कर भी हम कम्पित हो जाते हैं। हमारे मन में वेदना का ज्वार उठ खड़ा होता है। एक चिड़िया सूखे वृक्ष पर से भी अपना घोंसला उठाते हुए रो पड़ती है, फिर हमें तो यहाँ अपार सुख तथा वैभव प्राप्त है। अपने घरों को छोड़ते हम पर क्या वीतेगी, आप सोचिए तो सही। हम द्वारिका को छोड़ं तो कैसे ? और यदि द्वारिका में रहें तो सदा आपके भय से कांपते रहे। इस समस्या को कैसे सुलझाया जाये। विद्वद्वर ! जब से अरिष्टनेमि जी के वचन सुने हैं हमारी माताओं, बहनों और सह धर्मिणियों के नेत्र सजल हैं, हमारे बालकों के मुख सरसों के फूलों की भांति पीले हो गये हैं। हमारी नगरी का चैन ही खो गया है। आपके प्रति हमारे हृदय में बड़ा आदर है। इसी लिए आपके पास आये हैं।

सुन कर दीपायन ऋषि भी गम्भीर तथा खेद विह्वल हो गये, उन्होंने कहा—"नागरिको ! अपने-अपने घरों को वापिस चले जाओ। तुम समझते हो कि तुम्हारा ऐश्वर्य छीनने का कारण मैं बनूंगा। विश्वास रक्खो मैं तुम्हें कोई कष्ट नहीं पहुंचाना चाहता। मैं ही इस सुन्दर नगरी को छोड़ कर कहीं दूर वनों में चला जाऊँगा। ताकि न रहे बांस न बजे बांसुरी।"

समस्त नागरिकों ने दीपायन ऋषि के प्रति आभार प्रगट किया और अन्त में बोले—"विद्वद्वर ! हम अपने स्वार्थ के लिए कैसे कहें कि आप नगर छोड़ द। फिर भी आपने यह निर्णय करके द्वारिका वासियों के

कल्याण के लिए जो त्याग की भावना दर्शायी है, उसे हम चिरकाल तक भूल न पायेंगे ।"

—और दीपायन उसी दिन द्वारिका छोड़कर चले गए ।

श्रीकृष्ण और बलराम दोनों दरबार में अपने आसनों पर विराजमान थे । द्वारपाल ने आकर प्रणाम किया और कहा—महाराज ! द्वारिका वासी दर्शन करना चाहते हैं ।"

"उन्हें सादर हमारे पास ले आओ ।" श्रीकृष्ण ने आदेश दिया ।

द्वारिका वासियों में प्रतिष्ठित सज्जनों ने प्रवेश करते ही विधिवत अपने महाराज को प्रणाम किया ।

"कहिए प्रजाजन ! कैसे पधारे ?"

'महाराज ! अरिष्टनेमि भगवान की वाणी सुन कर हमारे मन विचलित हो रहे हैं । हमें बताइये कि क्या करें ?"

"विचलित होने की आवश्यकता नहीं । धर्म में दृढ रहो । मद्य पान की बला का पूर्णतया बहिष्कार कर दो ।"—श्रीकृष्ण बोले ।

एक नागरिक बोला—"महाजन ! दीपायन ऋषि नगर छोड़ कर चले गए हैं ।"

एक आशंका से श्रीकृष्ण का मन कम्पित हो उठा—"कहीं किसी ने उनका निरादर तो नहीं किया ?"

"नहीं महाराज वे स्वयं ही कृपा कर गए ।"

श्रीकृष्ण को बड़ा सन्तोष हुआ । आराम की सांस लेते हुये वे बोले-- "नागरिक गण ! आप प्रजाजन से जाकर कह दीजिए कि जो व्यक्ति इस असार संसार के मोह को त्याग कर संयम धारण करेगा, दीक्षा लेगा, उसका दीक्षा महोत्सव हम स्वयं सम्पन्न करायेंगे । आज से प्रतिदिन हमारी ओर से दान दिया जाया करेगा । समस्त जनता भी दान करे । चरित्र को शुद्ध बनाये और धर्म-ध्यान में लगे । एक व्यक्ति का अधर्म तथा पाप भी सारे नगर की नौका को डुबा सकता है । दुखियों तथा पीड़ितों की सेवा करना और शत्रुओं को भी अभय दान देना प्रत्येक नागरिक को अपना स्वभाव बना लेना चाहिये ।" नागरिक श्री कृष्ण की बातें सुन कर 'धन्य

'धन्य' कहने लगे। उसी समय एक बोला—"महाराज जराकुमार तो आपका भाई है। फिर यह कैसे सम्भव है कि वही आप पर बाण चलाये। "भगवान! ने जो कहा वह किसी भ्रम वश नहीं, वे सर्वज्ञ हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य की सभी बातें उन्हें ज्ञात हैं। इस लिए सम्भव है कभी कोई बात उत्पन्न हो जाये।"

उसी समय जराकुमार ने प्रवेश किया। उसने प्रणाम कर के कहा—"महाराज! मैं नगर छोड़कर जाना चाहता हूँ। मुझे इस की आज्ञा दीजिए"

श्रीकृष्ण के मन में करुणा उमड़ आई। दौड़ कर उसे छाती से लगा लिया और गद्गद् स्वर से बोले—"भैया! तुम मुझे छोड़ कर चले जाओगे, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूं?"

कृष्ण के प्रति आदर प्रकट करते हुये वह बोला—'महाराज आज जगत में ऐसा कौन है जो आपके पराक्रम का मुकाबला कर सके। आप सर्वश्रेष्ट नीतिज्ञ हैं। मेरा सौभाग्य है कि आप मेरे भाई होते हैं। आप जैसे सत्यनिष्ठ परम प्रतापी, महाबली, भाई को पाकर कौन अपने को सौभाग्य शाली न समझेगा। पर जब से मैंने सुना है कि आपके प्राण मेरे द्वारा हरे जायेंगे, मुझे अपने से घृणा सी हो रही है। मैं चाहता हूं कि यह पाप मुझ से कदापि न हो। इसलिये इस नगर को छोड़ कर मैं कहीं दूर वनों में चला जाऊंगा, ताकि कभी ऐसा अवसर ही न आ पाये कि आपके प्रति मुझ से कोई धृष्टता हो।"

जराकुमार की बात सुन कर श्रीकृष्ण का मन भर आया वे बोले—"भैया! तुम जैसे व्यक्ति से तो मैं कभी स्वप्न में भी आशा नहीं कर सकता कि तुम मेरे प्रति अपने मन में लेश मात्र घृणा या क्रोध को स्थान दे सकते हो। इस लिये मैं तुम्हें वनों में जाने की आज्ञा दू तो कैसे?"
"भ्राता जी! मैं अपने द्वारा त्रिखण्ड को शोकातुर करना नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि भगवान की भविष्य वाणी के पीछे भी कोई आधार है। मनुष्य का मन चंचल है। न जाने कब क्या कर बैठे! इस लिये ऐसी

चिनगारी को घर में स्थान ही क्यों दिया जाये जो कभी भड़क कर दावा-नल का रूप ग्रहण कर सके। मैं अपने में ही शंकित हो उठा हूं। आपको अपने लिए नहीं, तो मेरे ही कल्याण के लिए आज्ञा देनी होगी।" जरा-कुमार ने विनय पूर्वक कहा।

"तुम धन्य हो कुमार! तुम्हारी प्रशंसा नहीं करते बनती। जी नहीं चाहता कि तुम्हें वन में भेजूं।"

"महाराज! मुझे आप सहर्ष आज्ञा दीजिए। मैं बनों में रह कर भीलों की भान्ति जीवन व्यतीत करूंगा, और सदा आपके चिरायु होने की कामना किया करूंगा—जराकुमार ने आग्रह करते हुए कहा।

नगरवासी जराकुमार और श्रीकृष्ण की जय-जय कार करने लगे। जराकुमार ने अपने भाई के प्रति जो प्रेम प्रगट किया था, श्रीकृष्ण के लिए जो त्याग करने का निश्चय किया था, उसकी सभी ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। श्रीकृष्ण की आंखों से अश्रुधार छूट गई। भाइयों की विदाई के इस दृश्य को देखने वालों की आंखें बरसने लगीं। बलराम ने सभी को धैर्य बन्धाया।—और जराकुमार बनों की ओर चल दिया।

× × ×

नगर के कितने ही लोगों ने संयम धारण किया। मद्य के भंडार को कुण्ड में फेंक दिया गया। मद्य नाम का कोई तरल पदार्थ भी द्वारिका नगरी में दिखाई न देता था। घर घर में तप जप होने लगा। सभी धर्म-ध्यान में लगे थे। भूल कर भी किसी पर क्रोध न करते। बड़े ही समझ बूझ कर कोई कार्य करते। सभी को भय रहता कि कहीं उनसे कोई अधर्म न हो जाए। इस स्थिति को देख कर श्रीकृष्ण तथा बलराम बड़े प्रसन्न हुये। दिन बीतते रहे। नगर में प्रेम तथा सहयोग का वातावरण था। उन्हीं दिनों एक दिन यादव कुमार क्रीड़ा करते करते गिरनारी कादम्बरी गुफा के कुण्ड के तट पर पहुँच गए। वहां हर्ष पूर्वक सभी आपस में प्रेम से खेलते रहे। थकने पर उन्होंने उस कुण्ड का शीतल जल पिया। पीते ही उन्हें मद्य का नशा चढ़ गया। वे बेचारे क्या जानते थे कि वे जो जल पी रहे हैं उसमें मदिरा मिली है।

सामने से गुफा में से निकलते तामस को देख कर एक यादव कुमार चीख पड़ा—"अरे देखो! यह तो दीपायन ऋषि है।" सभी की दृष्टि उन ओर चली गई। घूर घूर कर सभी ने उसे देखा। एक बोला—"हां, ठीक है, यही है वह ऋषि जो हमारा द्वारिका को जला कर भस्म करेगा। यही है वह जो स्वर्ग समान हमारी नगरी को बरबाद कर डालेगा।"

फिर तो सभी चोख पड़े—"तो क्या यही है वह जिस धूर्त के कारण हमारी अलकापुरी जलेगी?"

मदिरा के नशे में चूर उनमें से एक ने प्रस्ताव किया—अरे, तनिक इस से पूछो तो कि जिस नगर के अन्न-जल से यह पल कर इतना मस्त मोटा हुआ है, उसे भस्म करने से इसे क्या मिलेगा।"

मदिरा के नशे में सब भूल गये कि के उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं। बालकों की 'हूँ' तो प्रसिद्ध है ही। और जब कि मदिरा के नशे में धुत हो रहे हों तब तो कहना ही क्या, सब गुफा की ओर दौड़ पड़े।

जाते ही उन्हों ने चारों ओर से दोपायन को घेर लिया और पहले विस्फारित नेत्रों से उसे घूरते रहे।

एक खिलखिला कर हस पड़ा। दूसरे ने पूछा—"क्यों भाई! ऐसी क्या बात देखी इसमें कि तू मुंह फाड़ कर हंस दिया। हमें तो कोई विशेष बात दीखती नहीं।"

"अरे बिल्कुल वन मानुस लगता है—"हंसने वाले ने बड़ी कठिनाई से अपनी हंसी रोकते हुए कहा।

"वन मानुस ऐसे मुस्टण्डे होते हैं क्या?--तीसरे ने प्रश्न किया।

"देखो तो सही कैसी दाढ़ी छोड़ रक्खी है पट्ठे ने? और सिर के बाल तो देखो किसी मृगनयनी से कम थोड़े ही हैं—"चौथा बोला।

"अरे वाह रे तू भी खूब आया कवि कहीं का? सूअर जैसे बालों को कामिनी के केश बताता है—?" पांचवे ने कहा।

दीपायन को यादव कुमारों की बातों से क्रोध चढ़ा जाता था। उनकी आंखें लाल होती जाती थीं। यह देखकर एक ने कहा—"अरे!

यह तो गिरगिट की तरह रंग बदलने लगा। देखो तो सही आँखें कैसी लाल कर रहा है, मानो पूरी बोतल का नशा चढ़ता जा रहा हो।"

दूसरे ने उस से आगे बढ़ कर कहा—"अरे यह आंख है या लाल लाल बटन।"

"वाह रे, तू भी खूब निकला, यह बटन कहां से होने लगे। कोई कोट थोड़े ही हैं जो बटन लगे हों। यह तो बजरबट्टू है बजरबट्टू—"तीसरे ने कहा।

"पूरा भैंसा है भैंसा।" कोई बोला।

"भैंसा है तो इसे हरी-हरी घास खिलाओ।" एक और बोला।

"घास ! यह भी खूब रही---एक ने ताली पीटते हुए कहा—घास की क्या कमी लो मैं अभी ही इसे बढ़िया घास खिलाता हूँ।"

यह कह कर जलकुण्ड की ओर दौड़ गया। तट पर खड़ी घास लाने के लिए।

एक ने नशे में झूमते हुए कहा--"कहिए तापस जी महाराज जिस हांडी में खाओ उसी में छेद करो, यह किस ने आप को पढ़ाया ? द्वारिका की रोटियां तोड़ तोड़ कर तो यह लपेरे खाती हुई तोंद बढ़ाई। और इसी को भस्म करने की सोच ली। दीपायन क्रोध के मारे जल उठे उन्होंने कहा—"ओर मूर्खों ! तुम्हें किस असभ्य ने शिक्षा दी है। मुझ से आकर मस्खरी करते हो। जाओ चले जाओ अभी। मुझे क्रोध मत दिलाओ। वरना......................"

"वरना क्या हमें खा जायेगा।" तड़ाप से एक यादवकुमार ने कहा।

"मैं तुम्हें वह मजा चखाऊंगा कि ...."क्रोध से लाल हुए दीपायन ने कहा।

"अबे मजे के बच्चे ! हमारी ही बिल्ली और हमें ही म्यांऊं..." गरज कर एक यादव कुमार ने कहा।

"धूर्तो चले जाओ यहाँ से। मुझे मजबूर मत करो कि मैं तुम्हें अपने शाप से भस्म करदू।"— क्रोद्ध के मारे कांपते हुए दीपायन ने गर्जना की।

"अरे वाह ! बड़ा आया भस्म करने वाला । एक घुंसे से प्राण निकल जायेंगे बेटा के"—एक उद्दण्ड यादव कुमार ने चुनौती दी ।

उसी समय घास लेने गया हुआ यादवकुमार लम्बी लम्बी घास ले आया और यादव कुमारों ने आपस में उसे बांध लिया । फिर सभी दीपायन के मुंह के आगे कर के कहने लगे– "चरो बेटे चरो । नाराज मत होओ । देखो कितनी बढिया घास है ।"

अब तो दीपायन के क्रोध का ठिकाना न रहा । उन्हों ने कुपित होकर प्रतिज्ञा की—"यदि मेरी तपस्या में बल है, तो मैं मर कर अग्निकुमार बनूंगा और तुम्हारी नगरी को जला कर भस्म कर दूंगा ।"

ऋषि के मुंह से यह बात निकलती थी कि सारे यादव कुमार चीख उठे—"तू हमारी नगरी को तो भस्म बाद को करेगा, पहले हम ही तुझे भस्म किये देते हैं । इतना कह कर सभी द्वीपायन पर घास से वार करने लगे । फिर घूंसों से उसकी खबर ली । लात मारीं और फिर तो मदिरा के नशे में चूर यादव कुमारों ने उस पर बुरी तरह मार लगाई । अधमरा करके उसे वहीं छोड़ कर चले आये ।

  

अपने अपने घर आकर उनमें से कुछ ने अपने कारनामे को गर्व के साथ अपने माता पिता को सुनाया । एक ने अपने घर कहा—"जिस मूर्ख दीपायन के बारे में भगवान अरिष्टनेमि जी ने कहा है कि वह द्वारिका को जलाकर भस्म करेगा, आज हम उसी नीच की मरम्मत कर आये हैं ।"

उस की बात सुन कर मां बाप सिहर उठे । उस की आखों में भय मिश्रित आश्चर्य झांकने लगा ।

चलते चलते यह बात श्रीकृष्ण को भी ज्ञात हो गई । वे बड़े चिन्तित हुए और दुखी भी । तुरन्त गुफा की ओर भागे । अर्धमृत दीपायन की दशा देखकर वे रो पड़े । पास बैठ कर उन्होंने कहा—"श्रीमन् ! आपको यादव कुमारों ने यह क्या दशा करदी है ? देख कर आत्म ग्लानी के मारे मैं मरा जा रहा हूँ । मैं बहुत लज्जित हूं कि यादव कुमारों ने आपके साथ बहुत

अन्याय किया। मैं बहुत दुःखी हूँ। और आप से क्षमा चाहता हूँ। वे बालक हैं, नादान हैं नहीं जानते कि उन्होंने कितना बड़ा अनर्थ किया है। आप उन्हें क्षमा कर दीजिए। आप विद्वान हैं, ऋषि हैं। आप करुणा के सिन्धु हैं। आप योग्य पुरुष हैं। योग्य पुरुष बालकों की धृष्टता को अज्ञानी का कृत्य समझ कर भूल जाया करते हैं।"

बड़ी कठिनाई से दीपायन बोल पाए। बोले—श्रीकृष्ण ! अब तुम क्यों मुझे बहलाने आए हो ! मैं अपने साथ हुए इस अन्याय को क्षमा कर दूं यह मुझ से नहीं होगा। मेरे स्थान पर तुम्हारी यह दशा हुई होती, तो तब तुम्हें अनुभव हुआ होता कि दिल पर क्या बीतती है। मैं मर रहा हूं और तुम आए हो कि इस घृष्टता को भूल जाऊं। मेरी तपस्या भंग कर दी गई है। मुझे मार डाला गया है। और तुम मुझे शान्त करना चाहते हो ? तुम चाहते हो कि कोई कर्म करो और उसका फल न भोगो। यह कैसे सम्भव है ?"

बलराम भी आए थे। वे भी अनुनय विनय करते हुए बोले—"विद्वद्वर ! बालक क्या नहीं कर गुजरते। उनकी भूलों को तो क्षमा करना ही पड़ता है। आप जानते हैं कि हम किसी पर भी अन्याय होता सहन नहीं कर सकते, यदि किसी व्यक्ति ने आपको कष्ट पहुँचाया होता,तो हम स्वयं उसे दण्ड देते। पर उद्दण्डता बालकों ने की है। बालकों का स्वभाव ही चचंल होता है, सबसे बड़ी भूल तो उनकी यह हुई कि उन्हों ने सामने वाले कुण्ड का पानी पी लिया था, जिसमें मदिरा घुली है। बस मदिरा के नशे में ही वे इस दुष्कर्म को कर गए। उस समय तो वे पशु समान हो गए थे। आप उन्हें क्षमा कर दीजिए।"

"नहीं ! उन्होंने जो किया है उसका फल भोगना ही होगा। दीपायन ने कहा— मैं आपके कारण द्वारिका को छोड़ कर वन में चला आया था। मेरे उस उपकार का आपके कुमारों ने यह बदला दिया कि मेरे प्राणों पर हो बन आई। मैंने प्रतिज्ञा को है कि द्वारिका को जला कर भस्म करूगा। पर चूंकि आप दोनों मेरे पास क्षमा याचना करने आए हैं

इस लिए वचन देता हूं कि आप दोनों को जीवित छोड़ दूंगा। शेष सभी को जल मरना होगा।"

बार बार श्रीकृष्ण और बलराम विनती करते हुए, क्षमा याचना करने लगे। श्रीकृष्ण ने अन्त में उसके चरणों में शीश झुका कर भी क्षमा याचना की पर वह ऋषि न माना। परेशान होकर बलराम बोले—"भैया! अब अधिक कहने सुनने से क्या लाभ? यह हठी नहीं मानेगा। भगवान अरिष्टनेमि जी की भविष्य वाणी सत्य सिद्ध होकर ही रहेगी। चलो वापिस चल कर इसके प्रहार से नगर को बचाने के लिए प्रबन्ध करें। याद है न कि अरिष्टनेमि जी ने कहा था कि जब तक धर्म कर्म अवधान, तप होते रहेंगे तब तक दीपायन द्वारका का कुछ न बिगाड़ सकेगा।"

बलराम की बात सुनकर श्री कृष्ण दुःखित होकर बोले—"हां भैया अब इसके सिवा चारा ही क्या है।"

दोनों भाई वापिस आ गए और उन्होंने समस्त नागरिकों को बुला कर बताया कि अब हमारी परीक्षा का समय है। एक ओर दुष्ट बुद्धि दीयापन है दूसरी ओर हम सभी। आज से हम सभी दृढ़ता पूर्वक उपधान तप धर्म-कर्म करते रहें, ताकि उस दुष्ट का वार न चल सके।"

नागरिकों ने निश्चय किया कि भविष्य में और भी सावधानी से धर्म-ध्यान में लगेंगे।

उन्ही दिनों रेवताचल पर भगवान पधारे। श्रीकृष्ण अपने परिवार सहित उनके दर्शन के लिए पहुंचे। उपदेश सुन कर प्रद्युम्न सांब सारण निपध उल्मुक आदि अनेक कुमार महा प्रभावित हुए और समस्त मोह बंधन का छेदन कर आत्म कल्याणार्थ प्रभु के पास मुनि दीक्षा में दीक्षित हुए। इसी प्रकार श्री कृष्ण को रानी रुक्मिणी जांबवति, पद्मावती आदि के मन में वैराग छा गया और पति की आज्ञा पाकर उन्हों ने संयम धारण

किया। इसी प्रकार दूसरी रानियों ने भी दीक्षा ली और सभी घोर तपस्या करके मुक्ति पा गईं।

\+ + +

बारह वर्ष तक द्वारिका में धर्म-ध्यान आमिल तप होता रहा। सभी नागरिक धर्म निष्ठ होकर सभी काम धर्मानुसार करते रहे। उधर दीपायन मृत्यु के उपरान्त अग्निकुमार असुर होकर द्वारिका के चक्कर काटने लगा। परन्तु नागरिकों द्वारा किए जा रहे धर्म कर्मों के प्रभाव से उसकी एक न चली। पर वह अपने वैर को निकालने के लिए अवसर की खोज में रहा।

बारह वर्ष तक धर्म-ध्यान करने के उपरान्त एक बार एक नागरिक ने सोचा—"प्रतिदिन जप करने और अपने को धर्म निष्ठा में जकड़े रहने से हमारा बड़ा नियन्त्रित जीवन हो गया है। कुछ दिनों के लिये क्यों न खेल खेल लूं। कहीं मेरे ही धर्म न करने से सारी द्वारिका थोड़े ही जल जायेगी। नगर के दूसरे लोग तो दानादि में लगे ही हुये हैं।"

यही बात दूसरे ने सोची और एक दिन आया जब सभी पथ विमुख हो गये। बस अग्निकुमार का दांव चल गया। वह जिस अवसर की खोज में था वही आ गया।

\+ + +

अनायास ही सूर्य ग्रहण हो गया और बड़े जोर का भूकम्प आया। श्रीकृष्ण का सिंहासन उलट गया। वे कांप उठे। दौड़े बलराम के पास और बलराम श्री कृष्ण की खोज में दौड़े। पर पृथ्वी डगमग डगमग कांप रही थी। चारों ओर से भयानक आवाजें आ रही थीं। दिल दहला देने वाले चीत्कार सुनाई दे रहे थे। बड़े जोर की आंधी चल रही थी दीवारें पत्तों की भांति हिल रही थीं।

मकानों की छतें तड़ाक तड़ाक टूटने लगीं। श्री कृष्ण—"भैया राम" और बलराम—"हरि भैया, हरि भैया" कहते हुए दौड़े और एक स्थान पर दोनों एक दूसरे से टकरा गये। श्री कृष्ण कांप रहे थे और बलराम भी थर थर कांप रहे थे। श्री कृष्ण ने बलराम का हाथ पकड़ कर कहा—

"भैया ! तुम तो कांप रहे हो !" बलराम बोले—"और तुम तो बुरी तरह कांप रहे हो।"

"क्या बात है ? यह क्या हो रहा है ?"

"हां, यह क्या हो रहा है ?"—विस्फारित नेत्रों से चारों ओर देखते हुये बलराम ने भी प्रश्न किया।

तभी एक भंयकर अट्टहास सुनाई दिया। इतनी तेज आवाज थी वह कि दोनों भाइयों ने अपने कानों पर हाथ धर लिये।

उसी समय आकाश से अंगारों की वर्षा होने लगी। चारों ओर त्राहि त्राहि मच गई। चीखो पुकार में कुछ भी समझ में नहीं आता था कि कौन कहां है, क्या कह रहा है।

श्री कृष्ण चिल्लाये—"बलराम आग बुझाओ।" बलराम बोले—"भैया ! समस्त राज कर्मचारियों को आदेश दे दो कि वे आग बुझाएं।"

श्री कृष्ण कर्मचारियों की खोज में चले—"अरे कोई है अरे कोई है ?—"की आवाज लगाते हुये श्री कृष्ण चारों ओर दौड़ पड़े। पर कहीं से कोई उत्तर नहीं आता था। बलराम भी चिल्लाये—"कर्मचारियों बाहर आ जाओ आग बुझाओ।"

पर कहीं से कोई उत्तर न मिला। तब दोनों भाई पानी लेकर अपने महल की आग बुझाने लगे। परन्तु पानी आग में पड़ कर घृत की आहुति का काम करता था। ज्यों ज्यों आग बुझाने का प्रयत्न किया जाता रहा, त्यों त्यों आग और भी ज्यादा भड़कती रही। लाल लपटें आकाश को छूने लगी। चारों ओर धुआं और लपटें दिखाई दे रही थी। सभी लोग अपने अपने घरों की आग बुझाने में लगे थे। पर आग सभी जगह बढ़ती ही जाती थी। चारों ओर से आग की लपेट में आये हुये व्यक्तियों की चीखें सुनाई दे रही थी—"ओह हमें कोई बचाओ। अरे कोई बचाओ," की आवाजें आ ही रही थी। बालकों के करुण क्रन्दन कानों पर भयंकर चोट कर रहे थे। बलराम और श्रीकृष्ण अपने महल की आग बुझाने में लगे थे। पर आग बढती ही जा रही थी। लकड़ियां जलती जलती पटख रही थीं। छतें टूट टूट कर गिर रही थीं।

"नहीं। मां हम बिना तुम्हें लिये जायेंगे"—बलराम कहने लगे।

तभी उस कमरे का द्वार जल कर नीचे गिरा धड़ाम से और बलराम व श्री कृष्ण दोनों ने बल पूर्वक उन्हें वहां से निकाल लिया। दरवाजे खिड़कियां और छतों की लकड़ियाँ सब जल जल कर गिर रहे थे और बलराम तथा श्री कृष्ण दोनों भाई माता-पिता को बल पूर्वक बाहर लाये। कभी उनके सामने लपटें विषैले नाग की भांति फनफनाती हुई आतीं, कभी उनके पीछे से गरम हवाओं के थपेड़े शरीर को झुलसाने के लिये लपकते। कभी उपर से कोई लकड़ी धड़ाम से जलकर टूट पड़ती और लपटें उनके रास्ते को बन्द करती, तो कभी धुएं का भारी बादल आंखों को काट काट खाने दौड़ता। परन्तु दोनों भाई साहस पूर्वक आगे बढ रहे थे।

चीत्कारों, रूदन और चिल्लाहटों का साम्राज्य था तो आग की लपटें निरंकुश शासन की संगीनों की भांति वार करती थीं। वे श्रीकृष्ण जिन के नाम से बड़े बड़े बलिष्ठ वीर रणांगण में कांप उठते थे। जिनका मुख देख कर ही शत्रु सेनाएं दहल जाती थी, आज वही वासुदेव निस्सहाय से अपने माता पिता को अपने कंधे के सहारे महल से बाहर ला रहे थे, और लपटें उन्हें बार बार चुनौतियां दे रही थीं। उन के उज्जवल मस्तक, तेजवान मुख और उनके यश के सामने भी वे न कांपती थीं न उनसे भागती ही थीं। उन लपटों को न सुदर्शन चक्र का कोई भय था और न उनकी नीतिज्ञता का ही कोई सम्मान। उन लपटों से वे कांप उठते थे। जिस ने कभी भयभीत होना नहीं जाना, वही वासुदेव डरते, कांपते और अपने प्राण बचाने की चेष्टा करने हुए अपने पिता को बाहर ला रहे थे। जिनके एक संकट पर लाखों सैनिक अपने प्राणों की आहुति देने को दौड़ पड़ते थे, जिनकी उंगली के इशारे पर पाण्डव प्रलय मचाते रहे, आज उनके पुकारने पर भी कोई नहीं आता था। उन की विपत्ति में हाथ बटाने वाला कोई नहीं था।

वह बलराम जिन में कितने ही हाथियों की शक्ति बताई जाती थी, दावानल के सामने बिल्कुल शक्तिहीन, बल्कि भीरु बने हुए थे। और बार-बार प्रभु से अपने मां बाप को बचा सकने की शक्ति की याचना कर रहे थे।

ज्यों त्यों वे अपने माता-पिता को महल से बाहर लाये श्री कृष्ण दौड़े अश्वशाला की ओर ताकि रथ में जोड़ कर अपने आदरणीय

माता पिता को इस आग के तूफान से निकाल सकें । पर ज्यों ही वे अश्वशाला के मुख्य द्वार पर पहुंचे धड़ाम से द्वार नीचे आ गिरा । लपलपाती लपटें दीवार बन कर खड़ी हो गई । उनका वही रूप था, अभिमान और आत्मा विश्वास और चुनौती से परिपूर्ण रूप, जो कि जरासंध की सेना के सम्मुख श्रीकृष्ण का था। सामने लपटें थीं, और श्रीकृष्ण निस्सहाय उन्हें खड़े निहार रहे थे । जैसे रास्ते की याचना कर रहे हों । पर गर्वित लपटें लाल लाल रूप दिखा कर अपना क्रोध प्रगट कर रहीं थां । ऐसा क्रोध जिसके सामने लाख प्रार्थनाएं भी व्यर्थ सिद्ध होती हैं । अश्वशाला जल रही थी । उसी में उनके विभिन्न प्रकार के प्यारे प्यारे सुन्दर, मोहक, चंचल घोड़े भी जल रहे थे । उनके चीत्कार उठते थे मानो अपने स्वामी से दुहाई मचा रहे हों। पर वह श्रीकृष्ण जिसने भारी संकटों का भी डट कर विरोध किया जिस ने अपने भक्तों की विपदाएं टारने, उन्हें उबारने के लिए हर समय गौरवपूर्ण कार्य किए, ऐसे ऐसे जो कि असम्भव प्रतीत होते, वही कृष्ण परेशान व लाचार खड़े थे । वे अपने घोड़ों की पुकार पर उनकी सहायता को न जा सकते थे ।

"भैया ! जल्दी करो । आग चारों ओर से घेर रही है—बलराम ने पुकारा ।

और श्रीकृष्ण वहां से लौट कर रथ के लिए गए रथालय में अभी आग लगी ही थी कि वे जाकर विना अपने प्राणों का मोह किए अन्दर जा घुसे और एक रथ खींच लाये। श्रीकृष्ण जिन्हों ने सदा सेवकों से कार्य लिया था, स्वयं ही रथ खींचे ला रहे थे । यह देखकर वसुदेव जी के नयन भर आये । अवरूद्ध कण्ठ से बोले—"आहा क्या मैं यही दिन देखने के लिये जी रहा था कि मेरा परम प्रतापी त्रिखण्ड पति वेटा स्वयं रथवान का कार्य करेगा । उसे स्वयं रथ खींचना पड़ेगा। अपने दिल पर पत्थर रखकर श्री कृष्ण ने उत्तर दिया—"पिता जी रथवान का कार्य तो मैं महाभारत युद्ध में भी कर चुका हूं। आज अपने पिता के लिये यह कर लिया तो कौन बुरी बात होगी। आप अधीर न हों । इस रथ पर सवार हो जायें ।

मां बोली—"बेटा इस रथ पर बैठ कर हम क्या करेंगे ? भगवान की वाणी असत्य कैसे सिद्ध हो सकती है। वे सर्वज्ञ हैं, तू उन्हें झूठा सिद्ध करने का प्रयत्न क्यों करता है। तेरा प्रयत्न असफल हो जायेगा।

अपने आंसू रोकते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—"मां ! ऐसा न कहो। इतने कठोर शब्द अपने मुंह से न निकालो। बस जल्दी से रथ में बैठ जाओ।

"परन्तु बेटा घोड़े कहां हैं जो हम रथ में बैठें ?—"पिता बोले। ',बलराम भैया और मैं, यह दो अश्व क्या कम हैं ?"—अवरुद्ध कण्ठ से श्रीकृष्ण ने कहा।

वसुदेव की आंखों से अश्रुधारा बह चली। रोते हुए बोले---"क्या कह रहे हो बेटा ! तुम त्रिखंड नरेश हो। क्या घोड़ों के स्थान पर जुतने के लिये हो ?"

"पिताजी ! आग प्रलय मचा रही है और आप वाद-विवाद में पड़े हैं। शीघ्रता से रथ में बैठ जाइऐ"----बलराम बोले।

माता पिता रथ पर बैठ गए और दोनों भाई रथ में घोड़ों की भांति जुत गए। ओह जिसको तमाम संसार शीश झुकाता था, रणस्थल में जिधर वह होता, विजय श्री उधर ही पहुंच जाती। जिसके रण कौशल के सामने जरासंध जैसा महाबली न ठहर सका, जिसने कंस जैसे अभिमानी का वध किया, जिसके चरणों में सुख प्राप्त करने के लिए बड़े बड़े नरेश दौड़ पड़ते थे, जिसकी सवारी में सदा हाथी रथ और सहस्रों पालकियां तैयार रहती थीं, जो हजारों सेवकों की सेवा ग्रहण करता था, जिसके लिए स्वयं देवताओं ने द्वारिका नगरी बसाई थी, वही श्रीकृष्ण और उनका भाई बलराम घोड़ों का काम कर थे।

मां बाप की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। और दोनों भाई रथ खींच रहे थे। बड़ी कठिनाई से दोनों रथ को खींच कर दूर तक ले गए। सामने के सिंहद्वार तक वे बड़ी तीव्रता से सुरक्षित पहुँच गए। परन्तु सिंहद्वार से तो आग की लपटें उठ रही थीं। उन्हें देख कर दोनों भाई कांप उठे। आंख से ही बलराम ने संकेत किया कि शीघ्रता से खींचो और दोनों भाई लपटों के बीच से रथ को खींच कर ले जाने

ली। लपटें उनके शरीर को छूने लगीं। पर वे पितृ भक्त कोई परवाह न करते हुए निकल ही गए। जुआ और दोनों भाई बाहर आ गए और रथ का वह भाग जिसमें माता-पिता विराजमान थे द्वार के नीचे पहुंच गया। तभी धड़ाम से जलता हुआ सिंहद्वार ढह गया। और कृष्ण के पिता व माता सहित रथ मलबे के नीचे दब गया। एक चीख निकली और लकड़ियों के चटखने की आवाज में खोकर रह गई। देखते ही देखते रथ सहित माता-पिता जल गए। पीली व लाल लपटें उठीं। जैसे अट्टहास कर रहीं हों श्रीकृष्ण पर। कह रहीं हों—"भगवान की भविष्य वाणी को असत्य सिद्ध करने की असफल चेष्टा करके देख लो ना।"

कृष्ण दौड़े अग्नि में कूद पड़ने के लिए। परन्तु बलराम ने उन्हें पकड़ लिया। कहा--"यह क्या करते हो भैया ? भगवान् ने जो कहा था वही तो हो रहा है।"

कृष्ण भावावेश में आकर बोले—"छोड़ दो मुझे भैया ! अब मैं जीकर करूंगा भी तो क्या ? मुझ से अधिक भाग्यहीन और कौन होगा कि मेरी आंखों के आगे माता-पिता जीवित जल रहे हैं और मैं कुछ नहीं कर पा रहा। तुम्हीं बताओ। वे सहस्रों घोड़े, सहस्रों हाथी, सहस्रों कर्मचारी कहां हैं आज ? मैंने कभी किसी सवारी बिना थोड़ी दूर का भी सफर न किया और आज सवारी की कौन कहे, मेरे पैरों में जूते तक नहीं। न जाने जूते भी मेरा कब साथ छोड़ गए। मेरे चक्र सुदर्शन के सामने संसार की कोई शक्ति नहीं ठहरती थी, आज वह चक्र भी मेरे पास नहीं है। मैं निहत्था हूं। देख रहे हो मेरी दशा। द्रौपदी को महाबली हर कर ले गया। मैं अकेला ही उसे उसकी कैद से छुड़ा कर लाया। कभी किसी से भयभीत होना मैंने नहीं जाना। परन्तु आज मैं निस्सहाय हूँ। मेरा सर्वस्थ नष्ट हो गया। मेरे पास कुछ भी तो नहीं। जिधर देखता हूं उधर लपटें ही लपटें हैं। जिसने मुझे पुकारा मैं उसकी रक्षा को दौड़ पड़ा, आज मैं अपने प्रिय प्रजा-जनों के चीत्कार सुन रहा हूं। पर कुछ कर नहीं पाता। मेरी अलकापुरी के समान नगरी भस्म हुई जा रही है। लोग पानी पर पानी बहा रहे है, परन्तु आग में

पाना घी का काम दे रहा है। बुझने के बजाय आग और भड़क रही है। वह देखो, मेरा रनिवास जल रहा है। वहां मैंने अपनी प्रिय रानियों के साथ कितनी ही सुखद रातें व्यतीत की हैं। उसके दरवाजे पर कितनी ही सेविकाएँ रहा करती थीं। बिना मेरी आज्ञा के उस महल में पक्षी भी पंख नहीं मार सकता था। कितना वैभवशाली था वह महल। कितनी युक्तियों से उसे सजाया गया था। संसार भर का सौंदर्य कला और वैभव जैसे कि उसी में सिमट गया था। पर आज वह जल रहा है। कला का सर्वोत्तम नमूना भस्म हो रहा है। पर न उसकी रक्षा करने वाला कोई है और न उस के जलने पर मेरे सिवा कोई दुःख ही प्रगट करने वाला। और वह देखो मेरा दरबार कैसा ध्वंस हो गया है। मेरे हाथी, घोड़े, रथ, सैनिक, गाड़ियाँ, पालकियां, नाट्यशाला, अस्त्र-शस्त्र भण्डार, अरे सभी तो भस्म हो गया। मैं हूँ यहां और मेरा वैभव वहां ध्वज हो गया है। कभी प्यास लगती तो मेरे एक ही संकेत पर दश सेवक सिर झुकाये तैयार कहते थे। आज कोई भी नहीं है। कभी मेरी सवारी निकलती तो पंचरंगी सेनाएं, बाजे, हाथी, घोड़े और रथ ऐसे धूम-धाम से चलते कि लोग मंत्र मुग्ध हो जाते। मकानों की छतों पर छज्जों पर सड़कों पर चारों ओर नर-नारियां जय जयकार करते होते। और आज मैं सड़कों पर खड़ा हूँ। कोई शीश झुकाने वाला, न जय जय कार करने वाला। न कोई ढोल बजाने वाला, न अंगरक्षक, और न सवारो ही। लुटा हुआ खड़ा हूं। हाय! जरा सी देरि में मेरी दुनियां ही वदल गई।"

श्री कृष्ण का विलाप सुनकर वलराम ने धैर्य बंधाते हुए कहा—"तभी तो भगवान मोह का खण्डन करते हैं। जो विध्वंस हो गया अव उसके लिये रोने से क्या लाभ—? भूल जाओ भैया उन पुरानी वातों को। हां, अव वे पुरानी ही हो गईं। अव तो अपने किसी मित्र के यहां चलो। और उसके सहयोग से भावी जीवन व्यतीत करो। याद करो उन दिनों को जव तुम एक ग्वाले थे। पशु चराया करते थे। वस जैसे थे वैसे ही वन जाओ। उत्थान पतन की सारी गतियों में अपना निर्वाह करना, दुःख और सुख में एक समान रहना ही महापुरुषों का लक्षण है। यह जो

ध्वंस हो रहा है, अनित्य था अतः मिट गया। जिसके मोह ने तुम्हें जकड़ रखा था वह गया। अब तो एक ही रास्ता है कि कहीं—चलो और किसी की सहायता प्राप्त करके अपना पुनरुद्धार करो।"

"भैया! मैं तो दूसरों का उद्धार करता रहा—श्रीकृष्ण दुखित होकर बोले। मैंने सदा अपने से छोटों को शरण दी। जो मुझ से छोटे थे, निर्बल थे, वे तो मेरी शरण आये। अब मैं किस को शरण जाऊं?"

पांडवों की तो आप ने बहुत सहायता-की है, चलो उन्हीं के पास चलें। ऐसे संकट के समय वे आप की अवश्य ही सहायता करेंगे"—बलराम ने एक रास्ता सुझाया।

"नहीं भैया! जिन्होंने सहायता के लिये सदा मेरे सामने हाथ पसारे उन से सहायता की याचना मुझ से नहीं हों सकेगी। फिर सुभद्रा अपनी बहन है। उसके घर जाकर रहूं यह मुझ से न हो सकेगा।—"श्रीकृष्ण ने कहा।

"भैया! कुन्ती तो अपनी बुआ हैं ना। उसके पास जाने में कैसी लज्जा। ऐसे आड़े समय पर वह हमें अवश्य ही सहायता करेगी। फिर अपने कौशल से हम ऐसी ही नगरी पुनः तैयार करेंगे—" बलराम ने प्रस्ताव किया।

श्रीकृष्ण ने एक बार पुनः अपने पुराने गौरव का बखान किया और विलाप करने लगे। परन्तु बलराम उन्हें आग्रह करके अपने साथ ले चले। चल पड़े दोनों पाण्डवों की ओर।

चारों ओर आग ही आग थी। विध्वंस और विनाश के इस वातावरण को देखते ही डर लगता था। अभी तक लोग अपने घरों को बचाने की कोशिश कर रहे थे और कोशिश में वे स्वयमेव स्वाहा हो रहे थे। दोनों भाई हसरत भरी नजरें गली, कूचों, सड़कों, जलते मकानों आदि पर डालते हुए चले जा रहे थे।

"ओह! कल ही की तो बात है मेरी सवारी किस धूमधाम से निकली थी। परन्तु आज न सिपाही, न पियादे, न रथ न बाजे, कुछ भी नहीं। चल रहा हूं रंक की भांति। अरिष्टनेमि भगवान ने कितनी सच्ची बात कही थी। मैं पूर्णतया प्रयत्न करने पर भी होनी को न टाल सका।

क्या रक्खा है, इस वैभव में, क्या रक्खा है संसार में। जिस सम्पदा के लिए बड़े बड़े युद्ध होते हैं, लोग प्राणों की आहुति तक करते हैं, क्षण भर में समाप्त हो जाती है।"—श्री कृष्ण विलाप करते जाते थे।

और बलराम यह कह कर सान्त्वना देते जाते थे कि—"भैया! जो होना है उसे टाला नहीं जा सकता। जो कुछ हुआ हमारे ही कर्मों का का फल है। जिसे भोगे बिना हम रह नहीं सकते थे।"

× × ×

रास्ते में भूख लगी। पर पास में भोजन सामग्री का नाम भी न था। पानी पी पीकर ही गुजारा करते चले जा रहे थे। त्रिखण्ड के अधिपति श्री कृष्ण को भूख लगे और रोटी तक नसीब न हो। वाह रे पतन! वाह रे भाग्य। हलक सूख गया, पर पानी नहीं मिलता। कई कई मील प्यासे चले। पर एक स्थान पर जाकर भूख के मारे श्रीकृष्ण गश खाकर गिर पड़े। बलराम पास ही बैठ गए। बोले—"भैया! क्या बात है?"

"राम! अब मुझ से नहीं सहा जाता। भूख के मारे मैं बहुत शिथिल हो गया हूं। कहीं से रोटी का प्रबन्ध करो। चाहे सूखी ही हो, घास की क्यों न हो पर कुछ खाने को लाओ।"—श्री कृष्ण बोले।

"कहां से लाऊं रोटी। पास तो फूटी कौड़ी नहीं। क्या भीख मांगू?" कहते कहते बलराम की पलकें भीग गईं।

"लो यह अंगूठी और जाकर सामने के हस्तिकल्प नगर में इसे बेच कर कुछ ले आओ।"—श्रीकृष्ण ने अपनी अंगूठी दी जिस पर कि उनका नाम खुदा था। बहुमूल्य थी वह अंगूठी। बलराम तुरन्त नगर की ओर छल पड़े।

+ + +

हलवाई की दुकान पर पहुंच कर उन्होंने वह अंगूठी दी और बोले—"पूरियां दे दो कुछ।"

हलवाई इतनी बहुमूल्य अंगूठी को देखता ही रह गया। पहले अंगूठी देखी, फिर बलराम को नीचे से लेकर ऊपर तक घूर कर देखा।

बड़ी बुरी दशा में थे वे। हलवाई अचम्भे में पड़ गया। सोचने लगा कहीं यह अंगूठी चोरी करके तो नहीं लाया ?—अंगूठी पर श्रीकृष्ण का नाम खुदा देख कर उसका शक और भी बढ़ गया। बलराम को दुकान के अन्दर बुला लिया। बड़े आदर से बैठाया। और थोड़ी देरी प्रतीक्षा करने को कह कर तुरन्त राजा के दरबार में गया। जाकर अंगूठी प्रस्तुत की। राजा ने श्रीकृष्ण की अंगूठी देखी तो आंखों में रक्त उतर आया। वह धृतराष्ट्र का पुत्र अच्छदन्त था। श्रीकृष्ण को शत्रु समझता था। द्वारिका जलने का समाचार उसे ज्ञात था। समझ गया कि अवश्य ही श्रीकृष्ण यहां आया हुआ है। इस समय न उसके पास सेना होगी न अस्त्र-शस्त्र। बस घेर कर मार डाला जाये। कौरवों का बदला ले लिया जाय। तुरन्त सेना सजवाई और चल पड़ा श्री कृष्ण को पकडने। नगर के चारों ओर के द्वार बन्द करवा दिए और हलवाई की दुकान पर बलराम को जा घेरा

आफत में पड़े बलराम ने, जो कई दिन से भूखे थे, जब अपने सामने अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित सेना देखी तो समझ लिया कि एक नई विपता सामने आन खड़ी हुई। इस विपत्ति काल में उसके अन्दर पौरूष जागृत हो गया। एक उच्च सिंहनाद किया और खम ठोक कर सामने आ गये। उत्तर में सेना ने शंखनाद और सिंहनाद किए।

भूख से बिलबिलाते श्रीकृष्ण ने जब सिंहनाद और शंखनाद सुने समझ लिया कि भाई को शत्रुओं ने घेर लिया है। बस न जाने कहां छुपा हुआ पराक्रम, पौरूष और बल अंड़ाई लेकर जाग पड़े। सिंह की नाईं एक अंगड़ाई ली और भाग पड़े बलराम की सहायता को। पर जब नगर के द्वार पर पहुंचे तो द्वार बन्द पाया। उधर से बलराम का एक सिंह-नाद और उसके उत्तर में शत्रुओं के सिंहनाद सुनाई दिए। दिल तड़प उठा। जोश छा गया। नेत्रों में खून उतर आया। कनपटियां जलने लगीं और कुपित होकर द्वार पर पाद प्रहार किया फिर क्या था, ठोकर लगना था कि द्वार की जंजीर टूट गई। फाटक खुल गया। जब श्रीकृष्ण की एक ठोकर से द्वार खुलता हुआ देखा तो राजा कांप उठा। और जब श्री कृष्ण ने उसके सामने पहुंच कर सिंहनाद किया तो राजा के हाथों के तोते उड़ गए। तुरन्त हाथी से उतरा और चरणों में पड़ गया।

श्री कृष्ण का क्रोध शांत हो गया। उसे अभयदान दे कर और भोजन करके अपने रास्ते चल दिए।

+ + +

चलते चलते कोशाम्बी वन में पहुँच गए। बीहड़ बन, रास्ता ऊबड़ खाबड़ और कांटों भरा। नंगे पैरो श्रीकृष्ण बलराम के साथ चलते रहे। बड़े जोरों की प्यास लगी। बोले—"भैया! मुझे प्यास लगी है" "यहां तो कहीं पानी दिखाई नहीं देता। कुछ दूर चलो कदाचित पानी मिले" —बलराम ने कहा।

चल पडे। ज्यों त्यों करके कुछ दूर आगे गए। बोले—"भैया! प्यास बड़े जोर से लगी है।"

—"थोड़ी दूर और चलो शायद कहीं कोई जलाशय मिले" बलराम ने कहा।

और आगे चले। चलते रहे। पर पानीं कहीं दिखाई न दिया। आखिर एक बड़ के वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण गिर पड़े। बोले—"भैया! मैं मरा प्यास के मारे कण्ठ सूख गया है। अब नहीं चला जाता। कहीं से पानी लाओ।" बलराम उन्हें ठीक प्रकार से लिटा कर जल की खोज में चला।

पीताम्बर वस्त्र पहने श्याम वदन श्रीकृष्ण एक पैर पर दूसरा पैर रख कर लेटे हुए थे। उनके पैर में पद्म चिन्ह पूरी आभा के साथ चमक रहा था जैसे कि मृग नयन।

उधर एक व्यक्ति, जो भील के वेश में था, शिकार खेलता खेलता आ निकला। दूर से वड़ के वृक्ष के नीचे जो आकृति उसने देखी, समझ बैठा कि कोई मृग है। पैर में चमक रहा पदम उसे मृगनयन की भाँति प्रतीत हुआ। मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। सोचने लगा—"किस प्रकार निश्चित होकर बैठा है मृग, बस अब देरि किस बात की?"

और उसने धनुष पर एक वाण चढ़ाया मृग नयन का लक्ष्य करके जोर से खींच कर वाण मारा। वाण लगते ही श्रीकृष्ण चीत्कार कर उठे।

शिकारी शिकार हुआ समझ कर उसे उठाने के लिए दौड़ा। पर जब उसने मानव चीत्कार सुना वह सहम गया। बड़ा ही दुखी हुआ वह और निकट पहुँच कर बोला—'अरे भाग्यहीन तू क्यों इस वन में आ गया क्यों मुझ से यह पाप करा दिया। मैं तो वर्षों से इस वन में रहता हूं। पर किसी मनुष्य के दर्शन नहीं हुए। न किसी के दर्शन करना ही चाहता था पर आज तू यहाँ क्यों कर पहुंच गया। क्या तेरी मौत ही तुझे यहां खींच लाई थी? मैं तो श्रीकृष्ण के प्राणों को रक्षा के लिए यहाँ पड़ा हूँ। मनुष्य माया से बच कर रहता हूं। भील रूप में जीवन व्यतीत कर रहा हूं। पर तू न जाने कैसे यहां आकर मेरे हाथों मारा गया। मुझे क्षमा करना। मुझ से बड़ा भारी पाप हो गया।

श्री कृष्ण वाण की चोट से कराहते हुए बोले—"कौन? क्या जरा-कुमार?"

अपना नाम श्रीकृष्ण के मुख से सुन कर जराकुमार विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखने लगा तथा कुछ और निकट आया। पूछा---कौन हो तुम? तुमने मेरा नाम कैसे जाना "भाई! जिसके प्राणों की रक्षा के लिए तू वन में आकर रहा वह भाग्य हीन मैं ही हूं कृष्ण"----- श्री कृष्ण ने कराहते हुए कहा।

दौड़ कर जराकुमार ने श्रीकृष्ण के मुख को देखा। उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे। अवरूद्ध कण्ठ से कहा—भैया श्रीकृष्ण आप हैं? मुझ से कितना बड़ा अनर्थ हो गया?"

और उनके पैर से वाण खींच कर निकाला। श्रीकृष्ण के मुख से एक जोर का चीत्कार निकला। जराकुमार ने उनका सिर अपनी जांघ पर रख लिया और रोकर कहा—"हाय। मैं इस पाप से बचने के लिए नगर छोड़ कर वन में रहा। मैंने भील का सा जीवन व्यतीत किया। महल छोडे और यहां भटकता फिरा। और फिर भी इस पाप से न बच सका। हाय, हाय! मैं कितना पापी हूं। मैंने पूर्व जन्म में ऐसे कौन से पाप किए थे जिसका परिणाम मुझे इतना भयंकर भोगना पड़ रहा है। मेरे ही हाथों मेरा जगत प्रसिद्ध परम प्रतापी, यशस्वी और महान आत्मा भाई मरने जा रहा है। मुझे क्षमा कर दो भाई। मैं तो

समझा था कि कोई मृग है। आपके पैर में चमकता पदम देख कर मुझे मृग नयन भ्रम हुआ। आपके वस्त्रों ने मुझे भ्रम में डाल दिया।"

"अब विलाप करने से क्या लाभ जराकुमार? श्री कृष्ण बोले— भगवान अरिष्टनेमि जी को वाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। मेरी द्वारिका भस्म हुई और फिर तुम्हारे हाथों मेरे प्राण जा रहे हैं। अब शोक करने से क्या लाभ।"

द्वारिका के भस्म होने की बात सुनकर जराकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ पूछा----"क्या द्वारिका जल गई?"

"हां द्वारिका जल कर राख हो गई। हम उसे न बचा सके। विपत्ति के मारे पांडुओं के पास जा रहे थे कि रास्ते में प्यास लगी और मैं प्यास से व्याकुल होकर यहां पड़ गया। भैया बलराम पानी लेने गए हैं---" श्रीकृष्ण बोले।

जराकुमार पुनः रोने लगा—आह मुझे क्षमा कर दें। मुझ से बड़ा अनर्थ हो गया। मेरी यह आंखें जिन्हों ने ऐसा धोखा खाया, फूट क्यों नहीं गई? मेरी यह भुजाएं जिन से बाण चला, टूट क्यों नहीं गई। इस से अच्छा था कि मैं पहले ही अपना प्राणान्त कर लेता, सो यह दिन तो मुझे देखने को न मिलता।"

"जराकुमार! अब रोने और विलाप करने से कुछ होने वाला नहीं है। इसमें तुम्हारी तनिक सी भी भूल नहीं हुई दैवी शक्ती ही तुम्हें और मुझे यहां खींच लाई। अब तुम जल्दी ही यहां से भाग जाओ। क्योंकि बलराम आते ही, मेरी दशा देखकर आपे से बाहर हो जायेंगे और तुम्हारा बध कर डालेंगे, जाओ और अपने प्राणों की रक्षा करो--"श्रीकृष्ण ने रुकते रुकते धीरे-धीरे कहा।

"नहीं! मैं भागूंगा नहीं। बलरान मुझे मार डालें तो ही अच्छा है। मुझ जैसे पापी को कुछ तो दण्ड मिले। मैं अब जगत में जी कर क्या करूगा? कैसे दूसरों को अपना मुंह दिखाऊंगा?—जराकुमार ने शोक विह्वल होकर कहा।

जराकुमार! तुम यादव कुल के आखिरी सितारे हो। मैं नहीं चाहता कि यादव कुल का पूर्णतया अन्त हो जाये। तुम मारे गये तो फिर कौन

रहेगा, यादव कुल को बेल चलाने वाला ? जाओ, मेरी बात मानो और जल्दी यहां से चले जाओ। मेरे मरते ही बलराम भी अपने प्राण दे देंगे। तुम मेरी कमर से रत्नों की पेटी खोल लो और जाकर कुन्ती बुआ को देकर कहना कि श्री कृष्ण संसार से चला गया "—श्रीकृष्ण ने कहा। "मैं किस मुंह से कुन्ती के सामने जाऊंगा ? मुझ से यह नहीं हो सकेगा।" —दुखित होकर जराकुमार बोला।

"नहीं जराकुमार मेरी अन्तिम आज्ञा का पालन तुम अवश्य करो। मेरी बुआ को मेरा अन्तिम प्रणाम कहना और मेरी यह निशानी दे देना। जाओ, जल्दी चले जाओ। देखो बलराम आते ही होंगे।

श्री कृष्ण के बहुत आग्रह करने पर जराकुमार रोता हुआ वहां से चला गया।

  

बलदेव की दीक्षा और स्वर्ग गमन--

पानी लेने को गये हुए बलराम को मार्ग में अनेक अपशकुन होने लगे। जिससे उनका हृदय व्याकुल होने लगा। प्यास से व्याकुल श्रीकृष्ण जी के प्रति उन्हें नाना प्रकार की आशंका पैदा होने लगी। अतः कमल पत्र के दोने में पानी लेकर जब शीघ्रता से वापिस उस स्थान पर आये, जहां कि भाई को छोड़ गये तो देखा श्रीकृष्ण जी सो रहे हैं मन में हर्ष हुआ और पास में बैठ गये। परन्तु धीरे धीरे काली मक्खियां चारों ओर उस शरीर के भिनभिनाने लगी और किसी प्रकार की भी चेष्टा शरीर में नहीं हो रही, यह देखकर बलराम ने मुख पर से वस्त्र को खेंच लिया। देखा जिसे मैं सोता हुआ समझ रहा था वह हंस तो कूच कर गया है, मात्र निर्जीव शरीर पड़ा है। बलराम के हृदय को भयंकर आघात हुआ। वह क्षण भर के लिये मूच्छित हो गये। थोड़ी देर के बाद जब संज्ञा प्राप्त हुई तो विचार करने लगे कि पैर में घाव लगा हुआ है। रक्त प्रवाह शुष्क सो गया है। अवश्य हो किसी दुष्ट ने सोते हुए भ्राता को विष बुझे वाण का लक्ष्य बनाया है। और मेरे आने से पहले ही वह अपने वाण को निकाल कर चलता बना है। उसी आशीविष के प्रभाव से आज मेरा प्रियबन्धु मुझ से बिछुड़ गया है।

यह विचार आते ही दुःख के साथ साथ बलराम क्रोध से फुंफकार उठे। उन्हों ने बड़े जोश से सिंहनाद किया और गर्जना करी कि "जिस दुष्ट नें सोते हुए मेरे बन्धु को मारा है, वह यदि कुछ शक्ति रखता है तो मेरे सामने आये।" इस प्रकार गर्जना करते हुये आस पास के बन प्रदेश में बलराम घूमने लगे। परन्तु जब कोई भी पुरुष उन्हें दिखाई न दिया तो विषण्णमना श्रीकृष्ण जी के पास आकर बच्चों की तरह फूट फूट कर रोने लगे। हां भ्राता तुम मुझे छोड़ कर कहां गये। तुम तो कहा करते थे कि मैं तुम्हारे बिना एक घड़ी भी नहीं रह सकता। परन्तु आज तुमने मुझे एकाकी क्यों छोड़ दिया है। अथवा क्या तुम मुझ से रूष्ट हो गये हो जो बोलते नहीं हो। ऐसे नाना प्रकार से बहुत देर तक बलराम जी विलाप करते रहे। और अन्त में श्रीकृष्ण जी के शव को कन्धे से लगा कर मोह वश बलराम जी पृथ्वी तल पर घूमने लगे। उनकी यह विक्षिप्तों की सो अवस्था देखकर सिद्धार्थ देव ने जो कि इनका पहले सारथी था, फिर भगवान अरिष्ट नेमिनाथ जी के पास मुनिदीक्षा लेकर काल करके स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था, विचार किया, कि दीक्षा के समय मेरे से बलराम जी ने वचन लिया था कि यदि कोई विपत्ति मेरे ऊपर आये तो समय पर मुझ को प्रतिबोध अवश्य देना। सो इस समय वह उपकारी महान आत्मा अपने अनुज बन्धु के मोहवश कि कर्त्तव्य विमूढ़ हो गया है। अतः उन्हें सावधान करना मेरा कर्त्तव्य है।

उसने तुरन्त वैक्रिय शक्ति से एक पत्थर का रथ बनाया। और बलराम के सम्मुख पर्वत से उतारते हुए उसे शतशः खण्ड-खण्ड कर डाला। और लगा उन पत्थरों को जोड़ जोड़ कर पुनः रथ बनाने की चेष्टा करने।

अरे मूर्ख कहीं टूटा हुआ पत्थर का रथ भी जुड़ा करता है! हंसते हुए बलराम ने सारथी रूपी सिद्धार्थ देव को समझाना शुरू किया।

श्रीमान जी, जब मरा हुआ पुनः जीवित हो सकता है तो पत्थर का रथ क्यों नहीं जुड़ सकता? व्यंग करते हुए सिद्धार्थ देव ने बलराम को समझाने की चेष्टा की।

अच्छा, मेरे भाई के लिए ऐसे अप शब्द बोलता है। जरा ठहर तो सही। कह कर क्रुद्ध बलराम उसे पकड़ने को झपटे। परन्तु भागने का नाटक करता हुआ देव, क्षण भर में उनकी नजरों से अदृश्य हो गया। और आगे जाकर पत्थर शिला पर कमल रोपने की चेष्टा करने लगा।

वाह, आज क्या मूर्खों से पाला पड़ा है। सोचते हुए बलराम बोले--भाई पत्थर पर भी कभी कमल उगते हैं ?

क्यों नहीं ! जब मरे हुए जिन्दा हो सकते हैं तो पत्थर पर कमल क्यों नहीं उग सकते ? सिद्धार्थ देव ने उद्‌बोधन दिया।

अरे किस जड़मति से मैं बोल पड़ा ? जो पुनरपि वही अपशब्द सुनने को मिला। और भुनभुनाते हुए राम आगे बढ़ गये।

लेकिन आश्चर्य मग्न हो गये, जब थोड़ी दूर पर जाकर देखा कि एक ग्वाला गो कंकाल को हरी हरी घास खिलाने की चेष्टा कर रहा है। और उसकी मूढ़ता पर खिन्न होते हुए समझने लगे कि, कहीं मृत गाय का कंकाल घास चरा करता है ? अरे बुद्धिहीन कुछ समझ से काम ले।

महराज दूसरों को उपदेश देना ही जानते हो, लेकिन अपनी तरफ नहीं देखते हो ? जब आप मृत कलेवर से जिन्दा होने की आशा लिये फिरते हो तो मैंने मृत गाय को घास चराने की चेष्टा करके कौन-सा अपराध किया है जो मुझे बुद्धिहीन फरमाते हो ? ग्वाल रूप धारी सिद्धार्थ देव ने समझाने की चेष्टा की।

बलराम के हृदय में संकल्प विकल्प उठने लगे। क्या कारण है सभी पुरुष एक ही बात को बारम्बार दोहरा रहे हैं। क्या सचमुच ही भाई काल कर गया है ? इस प्रकार संशय में पड़े हुए राम को देखा तो समय उपयुक्त समझ कर सिद्धार्थ देव अपने असली स्वरूप में प्रगट होकर बोला--बलदेव, मैं आपका सारथी सिद्धार्थ हूं। और अपने वचनानुसार तुम्हें सावधान करने के लिए देवलोक से आया हूं। जैसा कि भगवान अरिष्टनेमि नाथ जी ने फरमाया था कि "श्री कृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथ से होगी", सो वह उसी प्रकार हुई। और श्री कृष्ण के आदेशानुसार सूचना देने के लिए जराकुमार पांडवों के पास चला गया है।

बलराम सावधान हुए और कृतज्ञता प्रगट करते हुए बोले कि—हे सिद्धार्थ ! तुमने समय पर मुझे प्रतिबोधित किया। तुम्हें हार्दिक धन्यवाद है। परन्तु बन्धु वियोग से मेरी बुद्धि कुंठित हो गई है। अतः मुझे कोई मार्ग सूझता नहीं है, तुम्हीं बताओ कि मुझे अब क्या करना चाहिये ?

त्रैलोक्य शरण भगवान नेमिनाथ जैसे बन्धु पाकर आपको अब कर्तव्य निर्धारण करने में भ्रमित नहीं होना चाहिये। आप उन्हीं की छत्र-छाया को प्राप्त कर मानव जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कीजिये देव ने प्रेरणा दी।

बहुत ठीक, यही उचित है बलराम ने दृढ़ता पूर्वक कहा। और इस के पश्चात् सिद्धार्थ के साथ बलदेव ने सिन्धु और समुद्र के संगम स्थल पर श्रीकृष्ण जी के शरीर का दाह संस्कार किया। बलराम को मुनि दीक्षा की उत्कट अभिलाषा वाला जान कर भगवान नेमिनाथजी की आज्ञा से एक विद्याधर मुनि उसी स्थल पर पहुँचे। जिस पर कि राम ने उत्साह पूर्वक मुनि दीक्षा को गृहण किया और समीप के तुंगिका शिखर पर जाकर कर्मों के नाश करने के लिए घोर तप करना आरंभ किया।

× × + +

एक समय मुनि बलभद्र जी एक मास की तपस्या का पारणा करने के लिए नगर में जा रहे थे कि नगर से बाहर ही कूए पर पानी भरने के लिए आई हुई एक महिला की दृष्टि इन पर पड़ी। मानो साक्षात नल कुवेर हों या कामदेव हो मनुष्य का रूप धारण करके चले आ रहे हों। महिला की दृष्टि ठगी सी रह गई। उसे यह भी नहीं पता रहा कि मैं घड़े के गले में रस्सी का फंदा डालने के स्थान पर अपने पुत्र के ही गले में फंदा डाल रही हूं। फंदा कसा गया और लड़का चिल्लाया। महिला भी सहमी और मुनि की भी दृष्टि हठात् उधर ही खिंच गई। समझने में देर न लगी कि बालक की हत्या का कारण मेरा रूप ही बनने जा रहा था धिक्कार है इस अनर्थक रूप को। प्रतिज्ञा करता हूं कि आज से पारणा लेने के लिए किसी ग्राम, नगर में प्रवेश नहीं करूंगा। और वह दयालु वहीं से उल्टे पैरों लौट पड़े। वन में काष्ठादि लेने के लिए आने वालों से

जो कुछ प्राप्त हो जाता उसी में निर्वाह करते और दुर्भर तप द्वारा कर्मों के विनाश में तत्पर रहते।

राम मुनि की व्रत परिषद् में जहां शेर चीते व्याघ्र आदि किलोल करते थे वहां एक मृग, जिसे मुनि के चरणों में बैठे बैठे जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया था, अनन्यभक्ति करता था। काष्ठादि लेने के लिए आने वालों के पास भोजन पान की सामग्री देख पाता तो दौड़ता और ध्यानस्थ मुनि भी उसकी चेष्टाओं को पहचान चुके थे, अतः उसके पीछे-पीछे चल कर भिक्षा प्राप्ति के स्थल पर जाकर पारणा ग्रहण कर लेते थे।

एक बार रथकार उत्तम काष्ठ की खोज में उस वन में पहुँचे और काम में आने योग्य अनेक सरल वृक्षों को छेदन करना प्रारम्भ किया। तभी मृग के साथ-साथ बलभद्र महामुनि अपने एक मास की तपस्या के पारणे के लिए वहां पर पधारे। रथकारों के नायक की दृष्टि जब उन पर पड़ी तो वह महान हर्षित हुआ, कि इस वन प्रदेश में मेरे आज कैसे महान सौभाग्य का उदय हुआ है जो साक्षात् कल्पवृक्ष को सींचने का पुण्यावसर प्राप्त हुआ है। नायक आगे बढ़ा और पांचों अंग पृथ्वी पर झुकाते हुए नमस्कार कर भोजन पानी ग्रहण करने की प्रार्थना करने लगा।

करूणा सागर महामुनि, उभय लोक में चिन्तामणि रत्न के समान उस निर्दोष भिक्षा को निरपेक्ष भाव से ग्रहण कर रहे हैं। और नायक भक्तिभाव में गद्गद होता हुआ दिखाई दे रहा है। तभी ज्ञान बल से सब चेष्टाओं को समझने वाले उस मृग ने हर्षाश्रु गिराते हुए अपने नयनों को ऊंचा किया, और विचार करने लगा कि धन्य है धर्म के आश्रयभूत कृपालु महामुनि को, और धन्य है इस नायक को, जो ऐसे भगवन्तों की सेवा करने में मनुष्य तन का सदुपयोग कररहा है। मैं कैसा महापापी हूं जो न धर्म कर सकता हूं और न ही धर्मात्माओं की सेवा करने में समर्थ हूं।"

शुभ भावनाओं के पुञ्ज स्वरूप यह तीनों प्राणी जिस वृक्ष के नीचे खड़े हुए थे, वह आधा काटा हुआ था। सहसा वायु ने विकराल रूप धारण किया और वह वृक्ष टूट कर उन तीनों के ऊपर गिरा। जिससे काल करके शुभ भावना के प्रताप से तीनों प्राणी ब्रह्म देवलोक के पद्मोत्तर नामक विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए।

पाण्डवों की दीक्षा

मथुरा में सर्वत्र हर्ष तथा उल्लास का साम्राज्य छाया था। क्योंकि पाण्डव अपनी राजधानी के पुर्ननिमाण और अपने राज्य के उत्थान में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाए हुए थे। प्रजा को सुखी देखने के लिए वे सदा प्रयत्न शील रहते। प्रत्येक पंडित व्यक्ति की हर प्रकार सहायता करना, प्रजा जनों के साथ भ्रातावत व्यवहार करना, प्रत्येक के दुःख-सुख के साथी रहना दान देना और सेवा करना, यह थे उनके कुछ ऐसे कर्म जिनके कारण समस्त जनता प्रसन्न रहती और स्वर्ग पुरी की जनता की भांति सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी। पाण्डव प्रसन्न थे कि उन के राज्य में सर्वत्र शांति, सन्तोष और सुख का साम्राज्य था। लोगों के मन पर छाए दुःखों तथा शोक की काली घटाएं छुट चुकी थी और सभी पाण्डवों के प्रशंसक थे।

उन्हीं दिनों की बात है।

एक वन-वासी भील वेषधारी व्यक्ति ने जाकर कुन्ती को प्रणाम किया और बिना कुछ कहे सुने एक रत्नों से जड़ी पेटो उसके सामने रख दी। स्वयं हाथ जोड़ कर घुटनों के बल बैठ गया।

कुन्ती अभी अभी सामायिक से उठी थी, सामने रखी पेटी को देख कर उसका माथा ठनका और मुंह से निकल गया—"यह तो श्री कृष्ण की है।...तुम्हें कहां से मिली ?"

उस व्यक्ति का साहस न हुआ कि कुछ कहे।

कुन्ती ने उस की ओर देख कर पूछा—"तुम हो कौन?"

"मेरा नाम जराकुमार है।"

'तुम्हें यह पेटी कहां से मिली?" प्रश्न हुआ।

जराकुमार नीची नजर किए बैठा रहा।

कुन्ती की छाती धड़की। उस ने एक आशंका से सिहर कर पूछा—"बोलते क्यों नहीं ? बताओ न श्री कृष्ण की पेटी तुम्हें कैसे मिली ?"

"श्री कृष्ण ने स्वयं ही इसे आप के पास तक पहुँचाने के लिए मुझे दिया था। आप मुझे क्षमा कर दीजिये।"—कहते कहते जराकुमार का गला भर आया।

"वे हैं कहां ?"

जराकुमार ने सिर कुन्ती के चरणों में रख दिया और फफक फफक कर रोने लगा। हठात कुन्ती के नयन भर आये। अवरुद्ध कण्ठ से पूछा —" द्वारका में कुशल तो है ?"

"द्वारिका तो कभी की भस्म हो गई।" समस्त साहस वटोर कर उसने कहा। अश्रु प्रपात परन्तु विस्फारित नेत्रों से कुन्ती जराकुमार की ओर देखती रह गई। आश्चर्य चकित और द्रवित होकर। उसने पूछा— "कब ?—कैसे ?'

'कुछ ही दिनों पहले अग्निकुमार ने उसे भस्म कर डाला।"

सुन कर कुन्तो रोने लगी। उस से कुछ पूछते और कहते न बना। फूट-फूट कर रोती रही। और जब अश्रु गमन का छलकना कुछ बन्द हुआ तो कहने लगी---"हाय! अलका पुरी समान द्वारिका भस्म हो गई। श्री कृष्ण जैसे वासुदेव की राजधानी जल गई और श्री कृष्ण से कुछ न हुआ ?"

फिर पूछ बैठी—"श्री कृष्ण और बलराम आदि तो कुशल हैं ?"

जरा कुमार रोने लगा —"मुझे क्षमा कर दीजिये। मुझ पापी को क्षमा कर दीजिए।"

जराकुमार की बात सुन कर कुन्ती आश्चर्य में पड़ गई और उसका हृदय बुरी तरह धड़कने लगा। पूछा—"क्या कह रहे हो तुम? कहीं कृष्ण को कुछ हो तो नहीं गया।" 'वे अब संसार में नहीं......"

अभी जराकुमार कुछ न कह सका। पर इतना कहते ही कांप उठा।

कुन्ती दहाड़ें मार कर रोने लगी। चात्कार सुनकर महल के दूसरे लोग एकत्रित हो गए। जराकुमार को वहां रोते देख और कुन्ती को दहाड़ मार मार कर सिर पटकते देख कर सभी चकित रह गए। किसी की समझ में न आया कि क्या हुआ है।

जराकुमार से ही सबने पूछा कि क्या बात है।

समस्त साहस बटोर कर जराकुमार बोला—"श्री कृष्ण अब संसार में नहीं, द्वारिका जल कर भस्म हो गई। सभी नगर वासी और श्रीकृष्ण के

परिवार वाले जल गए। कृष्ण और बलराम बचे थे। श्री कृष्ण मेरे बाण से धोखे में मारे गये और कदाचित बलराम भी अब तक उनके शोक में संसार से मुंह मोड़ चुके होंगे।"

इतना सुनना था कि सभी के नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी। और कुन्ती तो मारे शोक के मूर्च्छित हो गई।

पांडवों ने जब सारा वृतान्त सुना तो वे संसार की असारता को अनुभव करके शोक करने लगे। युधिष्ठिर के मन में संहार से वैराग्य अंकुरित हुआ। उन्हों ने अपने भाइयों से कहा—"क्या रक्खा है इस संसार में? जब श्रीकृष्ण जैसे महान व्यक्ति को मृत्यु ने नहीं छोड़ा, और सोने की द्वारिका जल कर भस्म हो गई, श्रीकृष्ण को कोई पानी देने वाला न मिला, जंगल में तड़प कर उन्होंने प्राण दिये, तो फिर हम किस खेत की मूली हैं। एक दिन हमें भी इस संसार से सभी को रोते बिलखते छोड़ कर चला जाना होगा। यह वैभव यह सम्पति, यह विशाल राज्य यहीं रह जायेगा। कुछ भी हमारे काम न आयेगा। यह सोच कर मैं तो इस राज्य के प्रति उदासीन हो गया। मुझे यह महल काट खाने को आता है।"

अर्जुन ने हाथ मलते हुए कहा—"भैया! आप ठीक कहते हैं, हमने व्यर्थ ही इस सम्पति व राज्य के लिये कुरुक्षेत्र में रक्त बहाया। जिसे अग्नि जला कर कुछ ही समय में भस्म कर सकती है, उसके लिये क्यों मोह में मरा जाये। मुझे तो इस संसार से, इस वैभव से घृणा हो गई है। श्रीकृष्ण नहीं रहे तो हम कैसे रह सकते हैं।"

भीम ने दुखित होकर अपनी भुजाओं की ओर देखा और बोला—"मेरा यह बाहुबल भी मृत्यु के अभी किसी काम न आयेगा। इन भुजाओं से मैंने कितने ही वीरों को मौत की नींद सुलाया है। मुझे अपनी इस पापी भुजाओं से घृणा होने लगी है।

हाय, यह भुजाएं श्री कृष्ण के किसी काम न आ सकीं।"

नकुल ने सजल नयनों से सभी पर दृष्टिपात किया और बोला—"हाय! जिस युग पुरुष ने सदा हमें विपत्तियों से उबारा, उस के लिए हम कुछ भी नहीं कर सके। वासुदेव की भी अग्निकुमार के आगे एक न चली। वह तो अजेय थे, पर मृत्यु के सामने वे भी पराजित हुए।

मौत उन्हें खीच कर जंगल में ले गई। फिर किस से मोह करें। क्या रखा है जगत में। हमें नहीं चाहिए यह सब राज पाट।"

सहदेव ने भी कहा—"भ्राता जी ! बस बहुत हो चुकी। अब तो अपनी आत्मा के कल्याण के लिए कुछ करो। आप एक दिन हमें राज्य वापिस लेने के लिए वनों में ले गए थे, अब हमें सच्चिदानन्द प्राप्त करने के लिये बनों में ले चलिये। मैं तो अब गया इस जगत से। जहां श्रीकृष्ण सुखी न रह सके, वहाँ हम कैसे सुखी रह सकते हैं। राज्य पाट तो हम से एक दिन जाना ही है।"

पांचों भ्राता इसी संसार से विरक्ति के भाव प्रगट करने लगे। जो महल उन्हें बड़े सुन्दर दिखाई देते थे अब वे ही बड़े बुरे प्रतीत होने लगे। जो गद्दे मुलायम थे, जिन पर पड़ते ही नींद आ जाती थी, शूल की भांति चुभने लगे।

अरिष्ट नेमि जो सर्वज्ञ थे, उन्हों ने जान लिया कि पाण्डवों के मन में वैराग्य जागृत हो गया है, अतः धर्मघोष नामक गणधर को कुछ साधुओं सहित उन्होंने पांडु मथुरा भेज दिया। मुनियों के आगमन का समाचार सुनकर समस्त पाण्डव अपने परिवार सहित मुनि गण का दर्शन करने और धर्मोपदेश सुनने के लिए चल पड़े।

धर्मघोष गणधर के चारों ओर श्रद्धालु नर-नारियों की भीड़ थी। सभी उत्सुक दृष्टि से उनको ओर देख रहे थे। धर्म के प्रति अनुराग था उनके मन में और आस्था थी जिन भाषित धर्म में। गणधर ने अरिष्ट-नेमि प्रभु जी के प्रवचनों से प्राप्त ज्ञान अमृत की वर्षा आरम्भ कर दी। श्रोता उत्सुकता से गणधर की वाणी सुनते रहे। उनकी वाणी में ओज था, प्रभाव था और थी दिव्य शक्ति। मन के द्वार खुलने लगे। सभी के ज्ञान नेत्र खुले और उन्होंने स्वयमेव को पहचानने की चेष्टा की।

जब प्रवचन समाप्त हुआ, तो पाण्डवों को लगा मानो उनके हृदय का सारा अंधकार गणधर के ज्ञान आलोक से समाप्त हो गया है। उनका मन धुल गया था और अब वे अपने को भलि-भांति पहचान सकते थे। उन्हें अपना मार्ग आलोकित हुआ प्रतीत होता था। युधिष्ठिर के मन पर

छायी व्याकुलता लुप्त हो गई थी और अब वे उस मार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए लालायित थे जो आत्मा का सर्वोत्तम कल्याणकारी धर्म है।

युधिष्ठिर ने पूछा निर्ग्रन्थ मुनिवर जी! आपने हमारी आंखों पर बंधी मोह की पट्टी तो खोल दी। कृपया हम पांच भ्राताओं के पूर्व जन्म के सम्बन्ध में भी तो कुछ बताइये।"

गणधर बोले—"युधिष्ठिर! अरिष्टनेमि भगवान ने तुम पांचों के सम्बन्ध में जो बताया है, मैं उसे ही दोहराता हूँ। पूर्व जन्म में भी तुम पांचों भाई-भाई ही थे, नाम थे, सुरति, शान्तनु, देव, सुमति, गुणभद्र। अपने पूर्वजन्म के पापों के कारण तुम निर्धन होकर क्षुधा तृप्ति के लिए इधर से उधर फिरा करते थे। उन्हीं दिनों एक बार तुम पांचों ने मुनि यशोधर के दर्शन किये। धर्मोपदेश सुना और जिन भाषित धर्म पर पूर्ण श्रद्धा करके तुम पांचों ने महाव्रती बाणा धारण किया। अपने गुरु की विधिवत सेवा की, निर्दोष आहार से जीवन यापन किया, बारह प्रकार से तपस्या की। सुरति नामक मुनि ने विशेषतया कनकावली तप गुरु द्वारा निर्दशित प्रकार से किया। शान्तनु ने रत्नावली तप किया जो कि कनकावली से कठिन तप है। देवमुनि ने मुक्तावली तप शास्त्रानुसार किया और आठों कर्मों का नाश करने में तनिक भी प्रमाद नहीं किया। सुमति मुनि ने सिंह निष्क्रीड़ित तप किया। और गुणभद्र मुनि ने आयंबिल वर्द्धमान तप किया। इस प्रकार पांचों ने कठिन तप किए और अन्त में अनशन करके प्राण त्याग दिए। तप के प्रभाव से पांचों भ्राता स्वर्गधाम गए और वहां तेंतीस सागर व्यतीत करने के उपरान्त पाण्डु के घर आकर जन्म धारण किया।" धर्मघोष की वाणी सुनकर पांचों भ्राताओं को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने निश्चय किया कि जिन महाव्रतों को धारण करने से उन्हें स्वर्ग मिला और फिर मनुष्य जैसी सर्वोत्तम योनि को प्राप्त हुए, उन्हीं महाव्रतों को धारण करके इस मनुष्य जन्म को भी सफल बनाना चाहिए।

घर वापिस आकर पांचों भ्राताओं ने अपना निश्चय अपने सहयोगियों, साथियों, पत्नियों और माता कुन्ती को सुनाया। पहले तो सभी

को आश्चर्य हुआ, खेद भी प्रगट किया पर संसार से विरक्त हुए व्यक्ति को कौन रोक सकता है। मोह, प्रेम, आकर्षण और सामाजिक बन्धन विनती आदि कुछ भी उन्हें न रोक पाई। जराकुमार को राजकाज सौंपकर पाण्डव वनों की ओर चल पड़े। उस से पूर्व उन्होंने मुक्तहस्त से दान दिया। जिस समय वे चले, कुन्ती और द्रौपदी भी साथ हो ली। नगर से बाहर जाकर पाण्डवों ने नगर वासियों को जिन भाषित धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करने की प्रार्थना करके लौटा दिया और स्वयं धर्मघोष के चरणों में पहुंच गए। उनसे दीक्षा ली। कुन्ती और द्रौपदी भी सती बनी उन सभी ने मोक्ष प्राप्त किया।

द्वादशांग वाणी का अध्ययन करके पांडवों ने घोर तप के द्वारा कर्मों को नाश करना प्रारम्भ किया। प्रभु के दर्शनों की उत्कंठा लेकर उनके विचरण स्थल की ओर पांचों मुनियों ने प्रस्थान किया।

भगवान अरिष्ठनेमि नाथ ने मध्यदेशादि ज्ञान गंगा को प्रवाहित करके उत्तर दिशा को अपने पाद पद्मों से पावन किया। वहां से ह्रीमान पर्वत पर से होते हुए अनेक म्लेच्छ देशों के राजाओं, मंत्रियों, प्रजाजनों को धर्म में प्रतिबोधित किया। पश्चात् ह्रीमान पर्वत पर आकर वहाँ से किरात देश को पवित्र करते हुये दक्षिण पथ के देशों में धर्म सूर्य को प्रकाशित किया।

प्रभु वाणी को श्रवण कर अठारह हजार मुमुक्षुओं ने मुनि दीक्षा को अंगीकार किया और चालीस हज़ार महिलाओं ने साध्वी दीक्षा। प्रभु के चार सौ शिष्य चौदह पूर्वधारी हुए और पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, इतने ही वैक्रिय लब्धि वाले और केवल ज्ञानी हुये। एक हजार मनः पर्यवज्ञानी आठ सौ वाद लब्धि वाले। एक लाख उनत्तर हजार श्रावक और तीन लाख उन्तालीस लाख श्राविकाएं हुई। जिनको बारह व्रत धराये उन्हीं का यह कथन है:—

लोककल्याण में सर्वथा समर्थ इतनी विशाल धर्म परिषद् की स्थापना करने के पश्चात् अपना निर्वाण समय समीप जान कर प्रभु रैवतगिरी ऊपर पधारे। सर्व जीवों के अनुग्रहार्थ अन्तिम देशना देकर आषाढ़ शुक्ला अष्टमी

को चित्रा नक्षत्र में शैलेशी भाव प्राप्त करके पांच सौ छत्तीस मुनियों के साथ मोक्ष धाम को प्राप्त किया।

प्रद्युम्न और सांव आदि कुमार, श्री कृष्ण जी की आठ पटराणियां, प्रभु अरिष्टनेमि नाथ के बंधु और अनेक तपस्वी मुनिराज तथा राजमती आदि साध्वियों ने भी शाश्वत अव्ययपद को प्राप्त किया। शिवादेवी और समुद्र विजय भी माहेन्द्र देव लोक में उत्पन्न हुए तथा अन्य दशाहों ने महर्द्धिक देव पदवी प्राप्त की।

इधर जप तप में लीन पांचों पांडव विहार करते हुये हस्तिकल्प नगर में पधारे। और परस्पर विचार करने लगे कि यहाँ से रैवातादि मात्र बारह योजन है। अतः कल देवाधिदेव भगवान अरिष्टनेमि नाथ जी के दर्शन करके ही मासिक तप का पारणा करेंगे। इसके कुछ समय पश्चात् ही प्रजा से उन्हों ने सुना कि भगवान नेमिनाथ अपने शिष्यों सहित मोक्ष प्राप्त कर गये। यह सुन कर पांचों ही महामुनियों को महान खेद हुआ। वे सीधे सिद्धाचल पर पहुंचे। जहां घोर तप के द्वारा जन्म जन्मान्तरों के सर्व कर्मों का विनाश करके केवल ज्ञान प्राप्त कर अक्षय मोक्ष धाम को प्राप्त किया। और साध्वी द्रौपदी ने आयुष पूर्ण ब्रह्मदेव लोक में दिव्य देव ऋद्धि को प्राप्त किया।

मुद्रक :

सम्राट् प्रेस,

पहाड़ी धीरज, देहली ।